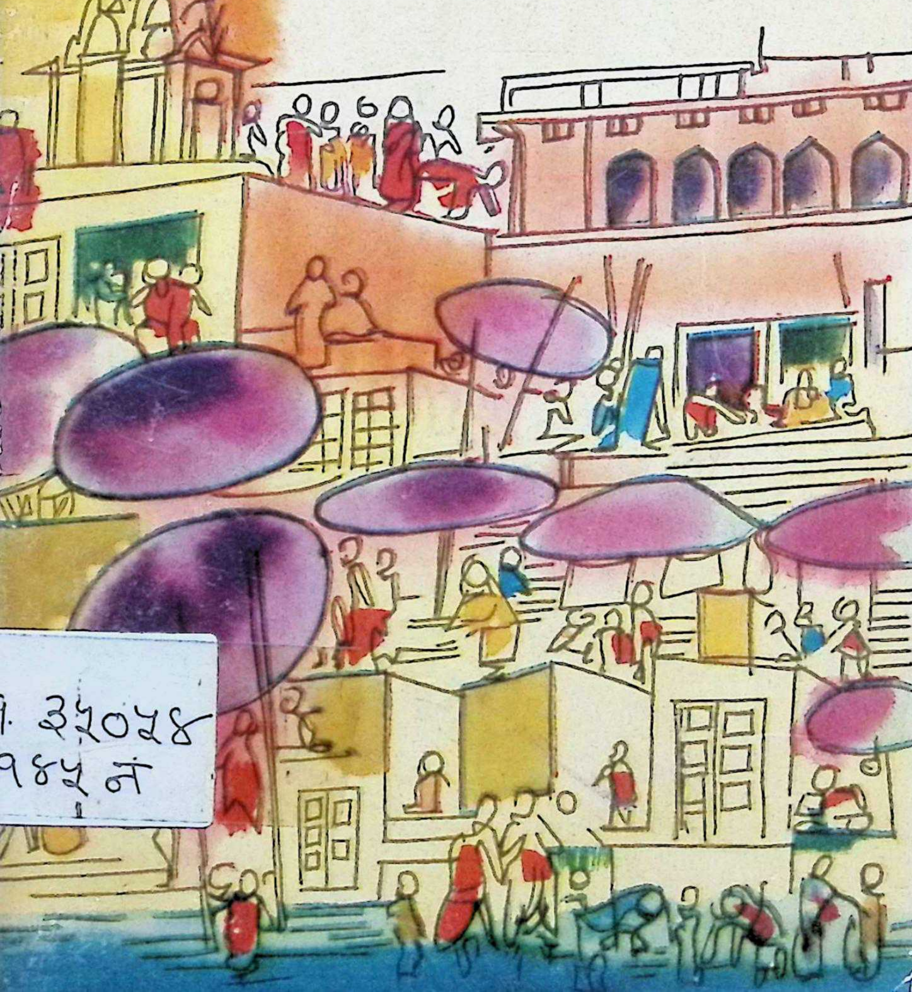
नदियों की कहानी

सरस्वती रामनाथ

गंगा



नदियों की कहानी

गंगा

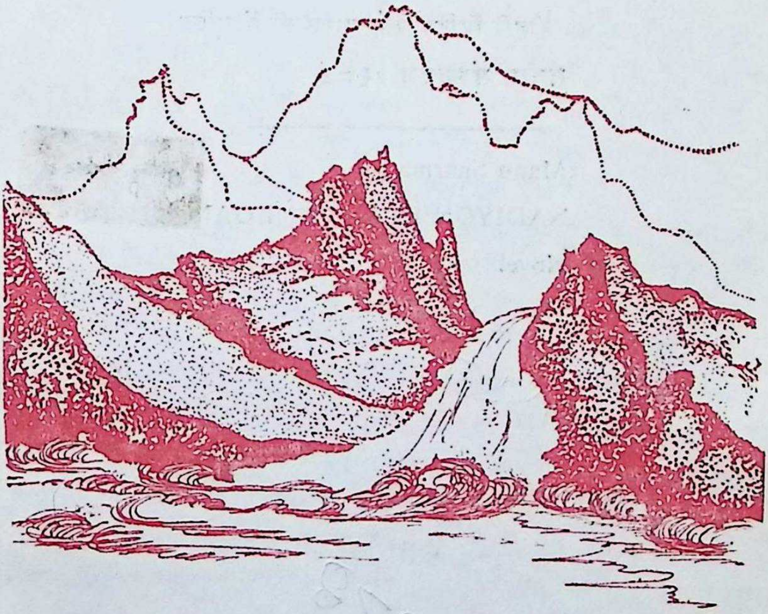
सरस्वती रामनाथ

सरस्वती रामनाथ

७ सितम्बर १९२४ को कोयम्बटूर (तमिलनाडु) में जन्मी श्रीमती सरस्वती रामनाथ तमिल और हिन्दी की प्रख्यात लेखिका हैं। बहुभाषाविद हैं। मौलिक ग्रन्थों के अतिरिक्त इन्होंने अनेक तमिल पुस्तकों का हिन्दी में तथा हिन्दी, बंगला, गुजराती और मराठी का तमिल में अनुवाद किया है। सर्जनात्मक कथा साहित्य के अतिरिक्त बाल साहित्य की तीन सीरीज तथा पाँच स्वतंत्र पुस्तकों का तमिल में आपने लेखन किया है। हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के उन्नीस उपन्यासों का भी आपने तमिल में अनुवाद किया है। तमिल में नदियों की कहानी सीरीज बहुचर्चित हुई है।

इनके कृति स्तम्भों में कम्बन रामायण का हिन्दी अनुवाद, प्रेमचन्द की जीवनी तथा महाभारत का तमिल अनुवाद है। अनेक पुरस्कारों से अलंकृत आपका संपूर्ण कर्तृत्व हिन्दी और तमिल का दृढ़ सेतु है।

संपर्कसूत्र
नं० १२ (अपस्टेयर्स)
विलून गार्डेन, कोआपरेटिव हाउसिंग
सोसाइटी ले आउट,
लालजी नगर, बैंग्लोर ५६००३६



(नदियों की कहानी गंगा)

भारत के प्रथम बुक क्लब

प्रचारक बुक क्लब

हिन्दी प्रचारक संस्थान

पो० बा० ११०६, पिशाचमोचन वाराणसी

—२२१००१ के लिए

विजय प्रकाश बेरी द्वारा प्रकाशित तथा

जौहरी प्रिंटिंग प्रेस, वाराणसी में मुद्रित

तृतीय संस्करण १९८५

Manu Sharma

मूल्य : २०·००

NADIYON KI KAHANI GANGA

Novel

1

दूर-दूर तक बर्फ ढँके गगनचुम्बी शिखर ! शिव का यह कमनीय कैलाश-प्रदेश प्रभात और सन्ध्या की सुनहली छाया में कुछ इतना दमक उठता कि दर्शक आत्मविस्मृत-सा हो जाता है। हिमाच्छादित गिरि-शृङ्ग, सघन वनों से युक्त तलहटी प्रदेश शिव के विश्व रूप का पावन स्मरण कराते हैं। बिखरी पड़ी जटा भाल से उफनते हिम-प्रवाह को, उमड़-उमड़ कर बहती गंगा को देखिए। कल-कल ध्वनि करती, पतित पावनी भागीरथी अपनी कहानी सुना रही है; सुनिए :—

मेरा नाम है गंगा। मुझे भागीरथी भी कहते हैं। भारतवासियों के मन में मेरे लिए बड़ी श्रद्धा है। दूर-दूर से मेरे दर्शन के लिये आये श्रद्धा-विगलित लोगों को देखते ही मेरा मन आनन्द से भर जाता है। लहरों रूपी हाथों को बढ़ाकर मैं उन्हें गाढ़ालिंगन में भर लेती हूँ। मेरे जल का शीतल स्पर्श पाते ही वे रोमांचित हो उठते हैं। उनका हृदय पवित्र भावनाओं से स्फुरित हो उठता है। तन, मन की मलिनता धुल जाती है। मेरा शीतल प्रवाह उन ताप-तप्त-लोगों की शारीरिक थकावट को ही नहीं, मानसिक संताप को भी हर लेता है।

मेरी हिमानी जलधारा में उतरकर गोता लगाने वाले क्षण भर के लिए मिले एकान्त में हृदय की न जाने कितनी अंतरंग बातें मेरे कानों में चुपचाप कह जाते हैं। बिना किसी हिचक के, दबी पड़ी घुटन, पाप और मलिनता की कथाएँ सुना जाते हैं। मानव-मन की ग्लानि, उसकी आशाओं-आकांक्षाओं का अहसास है मुझे। मैं उनसे बिलकुल निरपेक्ष नहीं बन पाती हूँ। मौन मुस्कान भरती, सब सुन

लेती हूँ। मंद-मंद लहरियाँ उठाकर उन्हें घेर लेती हूँ तो आश्वस्त मन से वे पुलक उठते हैं। उनके दिल का सारा भार हलका हो जाता है। मेरी जलधारा में क्षण भर के लिए अपने को विस्मृत कर वे अपनी व्यथा का बोझ उतार देने की तृप्ति के साथ-साथ जैसे नया जन्म पा लेते हैं, तन-मन में एक नूतन स्फूर्ति का अनुभव लिये लौटते हैं। 'जय गंगे', 'जय-जय गंगा माता', 'जय गंगा माई' के घोषों से मेरा तटवर्ती प्रदेश प्रतिध्वनित हो उठता है। इन जयघोषों में निहित स्नेह व भक्ति से मैं गदगद हो उठती हूँ।

कैलाश की ओर देखिए। कैसा नयनाभिराम दृश्य है। जटाजूट पर अर्धचन्द्र धारण किये त्रिपुंडधारी भोले शंकर की भव्य मूर्ति और जटा भार से स्फटिक धारा-सी निस्सृत मैं। ओह ! दर्शक अभिभूत-सा हो जाता है।

शिव के जटाजूट से इस मर्त्य लोक पर मैं क्यों उतर आयी ?

हिमवान मेरे पिता हैं यशस्वी व हिमजयी। इस भव्य भारत देश के मणि-मुकुट हैं वे। उत्तुंग चिरतुहिन गिरि श्रृंग, श्यामल गहन अरण्य प्रदेश। अविरक्त गति से बहती सलिल धाराएँ। भूगर्भ में अगणित खनिज संपत्ति--इन सबसे अतीव समृद्ध हैं हिमवान। उदय की बेला और संध्या काल में सूर्य अपनी सुनहली किरणें चढ़ाकर मेरे पिता को अंजलि अर्पित करता है। रत्नजटित मणि मुकुटों जैसे ज्योतिमय, तुषारमंडित शिखरों, गांभीर्य की साक्षात् मूर्ति बने खड़े मेरे पिता हिमवान का दर्शन मनोमुग्धकारी है।

पिता हिमवान हैं और माता का नाम है मनोरमा। उनकी हम दो बेटियाँ हैं। मैं बड़ी बहन गंगा हूँ। छोटी बहन उमा है। उमा ने भोले शंकर को वर लिया था और घोर तपस्या के बाद उन्हें पा भी लिया था। देवताओं ने मुझे देवलोक में आने का निमंत्रण दिया। पिता ने अनुमति दे दी। इसलिए मुझे देवलोक की 'देव नदी' बनने का सौभाग्य मिला। मुझे 'त्रिपताग' भी कहते हैं।

आकाश, पाताल और भूलोक में प्रवाहित हूँ न ? इसलिए यह नाम पड़ा है ।

मर्त्य लोक में असुरों का अत्याचार बढ़ गया और देवतागण पीड़ा से व्याकुल हो उठे । उन्हें मालूम हुआ कि शिव के वीर्य से जो पुत्र उत्पन्न होगा, वही असुरों का नाश कर भूमाता के दारुण दुःख दूर करेगा । वे सब ब्रह्मा के पास गये और उन्हें अपनी दुःख भरी कथाएँ सुनायीं । ब्रह्मा ने उन्हें शिव के पास जाने का परामर्श दिया । देवता-गण शिव के पास पहुँचे और असुरों के उत्पातों की कथा सुनाकर सहायता की प्रार्थना की । देवों के दुःखों पर शिव का हृदय सदय हो आया । उस समय मेरी बहन उमा अपने पति के साथ बड़े सुख से जीवन बिता रही थी । अपने सुख में बाधा देने वाले देवों पर वह क्रुद्ध हो उठी और तत्क्षण उन्हें शाप दे बैठी । देवगण घबड़ा उठे । शिव का वीर्य तेजस्वी था । उसे धारण करने की शक्ति किसी में न रही । देवताओं ने अग्नि से प्रार्थना की । अग्नि ने प्रसन्नता से उसे स्वीकार किया, मगर धारण कर न पायी । अंत में देवगण मेरे पास आये । मैंने बड़े सहर्ष उस वीर्य को धारण किया—लेकिन क्या कहूँ ? उस वीर्य का तेज मुझसे भी सहा न गया तो इस हिमालय की उपत्यका में मैंने उसे छोड़ दिया ।

उस वीर्य ने एक सुंदर शिशु का रूप ले लिया । बाँसों के झुरमुटों में मैंने उसे जन्म दिया था न ? इसलिए उसका नाम गांगेय पड़ा । उस शिशु के छह मुख थे । कार्तिक देवियों ने अपने स्तन्य-पान से उस शिशु को पाला और शिशु का नया नाम हुआ—कार्तिकेय । शिव के वीर्य का तेज अपार था । जहाँ-जहाँ वह पड़ा, विभिन्न धातुओं, खनिज द्रव्यों के रूप में बदलता गया । सोना, चाँदी जैसी अमूल्य धातुओं से हिमालय की उपत्यका समृद्ध हो उठी ।

ओह ! यह क्या ! कहानी सुनाते-सुनाते भूल गयी कि मैं इस धरती पर कैसे आयी ।

अयोध्या पर सगर नामक एक राजा राज्य करता था। केशिनी और सुमति उसके दो रानियाँ थीं। बहुत दिनों तक उन्हें कोई संतान नहीं हुई। फलतः दुःखी होकर राजा अपनी पत्नियों के साथ वन चला गया और एकनिष्ठ होकर तपस्या करने लगा। बहुत समय के बाद भ्रुडू मुनि उसके सामने प्रकट हुए। केशिनी ने अपने वंशवृद्धि के लिए एक ही पुत्र की कामना की। सुमति ने कीर्तिदायक पुत्रों की कामना की। मुनि के आशीर्वाद के फलस्वरूप केशिनि ने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम था असमंजन। सुमति के ६०,००० पुत्र हुए।

सगर राजा के आनन्द की सीमा नहीं रही। वे पुत्रों के साथ बड़े सुख से जीवन बिताने लगे, मगर इस सुख के बीच भी एक दुःख था। उनका एक पुत्र असमंजन आए दिन कोई न कोई बखेड़ा खड़ा करता रहता। उसके मूर्खतापूर्ण कृत्यों एवं क्रूर कार्यों से प्रजा आतंकित हो उठी। त्रस्त राजा ने एक दिन उसे राज्य से निष्कासित कर दिया। असमंजन को एक बेटा था अंशुमान। वह बड़ा वीर, गुणी और शीलवान था। सगर अपने इस पौत्र को बहुत प्यार करते थे। उस पर उन्हें पूरा भरोसा था। वे उसके राज्याभिषेक करने, यज्ञ—अश्वमेध यज्ञ की तैयारी करने लगे।

सगर के अश्वमेध यज्ञ का समाचार पाते ही इन्द्र के हृदय पर साँप लोटने लगा। वह चुपके से यज्ञ के अश्व को चुराकर ले गया। बिना अश्व के यज्ञ कैसे होता? सगर दुःख सागर में डूब गये। पिता को दुखित पाकर उनके ६०,००० बेटों ने निश्चय किया कि वे किसी न किसी तरह यज्ञ के घोड़े को ढूँढ़ लाएँगे और पिता के यज्ञ को पूरा करवाएँगे।

पिता का आशीर्वाद लेकर वे चल पड़े। उन्होंने जंगल-जंगल, पर्वत-पर्वत, गाँव-गाँव और नगर-नगर ढूँढ़ डाला, मगर कहीं भी अश्व न मिला। राजकुमार निराश हो गये। देवलोक में गये। वहाँ भी अश्व दिखाई न पड़ा। अंत में उन्होंने पाताल लोक जाने का निश्चय

किया। पर यह आसान काम न था। सगर पुत्र धरती को खोदने लगे। ६०,००० राजपुत्र बिना विश्राम के भूमि खोदते गये। उन्होंने ६०,००० मूल तक भूमि खोद ली, मगर अश्व कहीं नहीं दिखायी दिया। मारे आवेश के उन्होंने इतनी तेजी से पृथ्वी की खुदाई की कि भूमि हिल उठी। देव, गंधर्व, राजा, महाराजा, सामान्य मानव सब के सब भयभीत हो उठे। सब के मन में एक प्रश्न उभर आया, "अब क्या करें ?" अन्ततः ब्रह्मा ने उन्हें अभय देते हुए कहा, "घबराइए मत। महाविष्णु कपिल मुनि का अवतार लिये पाताल में तपस्या कर रहे हैं। इन्द्र ने यज्ञ के अश्व को उन्हीं के पास स्थित एक वृक्ष पर बाँध रखा है। सगर पुत्र पाताल में पहुँचेंगे तो अश्व को वहाँ पाकर कपिल मुनि को ही चोर समझेंगे और उन पर आक्रमण करेंगे। कपिल मुनि की कोपाग्नि उन्हें भस्म कर देगी। पर इस पर दुःख नहीं करना चाहिए। जो कुछ होता है, सब संसार की भलाई के लिए ही होता है। इस जम्बू द्वीप के चारों तरफ धरती इतनी गहराई से खोदी गयी है कि यह भारी गड्ढा उफनती जल-राशि से भर जायेगा जिसमें निरन्तर लहरें उठती रहेंगी। सगर पुत्रों द्वारा खोदे जाने के कारण इस स्थल का नाम सागर पड़ेगा।"

ब्रह्मा के ये वचन सुनकर सब निश्चिंत हुए। इधर सगर पुत्र, जम्बू द्वीप के पूरब, पश्चिम और दक्षिण में भूमि को खोदते जा रहे थे। आखिर उत्तर-पूरब की दिशा में उन्होंने एक स्थान पर एक मुनि को तपस्यारत पाया। निकट जाने पर, उनके निकट स्थित एक वृक्ष से बँधा अश्वमेध का घोड़ा दिखायी पड़ा। घोड़े को देखते ही सगर पुत्र अपना सारा श्रम क्षण भर के लिए भूल गये। लेकिन मुनि पर उन्हें अपार क्रोध आया। सोचा, "यही मुनि अश्व को चुराकर यहाँ ले आया है।" क्रोधोन्मत्त सगर पुत्रों ने मुनि पर आक्रमण की कुचेष्टा की।

तपस्यारत मुनि कपिल मुनि ही थे। उनकी मुँदी हुई आँखें खुलीं नहीं। वस, उनके मुँह से हुँकार की ध्वनि उठी। अगले क्षण ६०,००० सगर पुत्र जलकर भस्म हो गये।

इधर काल का रथ-चक्र घूमता रहा, काफी समय व्यतीत हो जाने पर पुत्र न लौटे तो चिंतित सगर ने अपने पौत्र अंशुमान से कहा, "वेटा ! तुम तो महाबली व प्रतिभाशाली युवक हो। समस्त कलाओं के पंडित हो। तुम जाकर अपने चाचाओं का पता लगाओ।" अंशुमान निकल पड़ा। उसके चाचाओं ने मार्ग बना ही रखा था। उस पर चलना कोई कठिन कार्य न था। देवताओं ने भी इस तेजस्वी, वीर युवक की सहायता की। विघ्न-वाधाएँ अपने आप ही दूर होती चली गयीं। अष्ट दिक्पालों ने उसे आशीष दिया। लम्बी यात्रा के बाद अन्त में अंशुमान पाताल लोक पहुँचा।

उत्तर-पूर्व दिशा में तपस्यारत मुनि, अश्व व राख के ढेर के ढेर देखते ही वह वास्तविकता समझ गया। क्षण भर के लिए उस साहसी युवक का अजेय हृदय भी डोल गया। चाचाओं की दुर्गति पर वह रोया, चिल्लाया, लेकिन कोई लाभ न हुआ। आखिर उसने अपने मन को शान्त कर लिया। सोचा, चाचाओं को सद्गति देने के लिए उनकी अन्त्येष्टि क्रियाएँ कर दूँ। उसने चारों तरफ जल ढूँढ़ा। लेकिन कहीं भी एक बूँद पानी न मिल सका। तभी निराश व दुःखी अंशुमान के सम्मुख गरुड़ भगवान प्रकट हुए। बोले, "वत्स अंशुमान, दुःखी न हो। सब कुछ ईश्वर की इच्छा पर घटित होता है। इससे दुनिया की भलाई होने वाली है। अगर तुम इन्हें सद्गति देना चाहते हो तो तुम्हें हिमवान की पुत्री गंगा को इस धरती पर लाना होगा। लेकिन वह तो देवलोक की नदी है। आकाश-गंगा को धरती पर किस भाँति ला पाओगे ? पर एक उपाय है। अश्वमेध का घोड़ा यहीं है। इस पर सवार होकर तुरन्त चलो। तुम्हारे दादा चिरकाल से प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

अंशुमान ने विवश होकर गरुड़ भगवान की बात मान ली और अश्वमेध घोड़ा लेकर अपने दादा के पास लौट आया। पौत्र द्वारा सारी स्थिति जानकर सगर बेहद दु:खी हुए। किसी तरह यज्ञ सम्पन्न हुआ। अंशुमान ने अपना प्रयत्न जारी रखा। मुझ गंगा को धरती पर लाने का प्रयत्न शुरू हो गया। इसी बीच सगर चल बसे। अंशुमान और उनके पुत्र दिलीप ने इसी कोशिश में जीवन अर्पित कर दिया। यज्ञादि किये गये, तपस्याएँ की गयीं, मगर कोई लाभ न मिला।

महाराजा दिलीप का एक पुत्र था – भगीरथ। पराक्रमी, बुद्धिमान व शीलवान। प्रजा के हितों का बड़ा ध्यान रखता था। उसके वंश में, पीढ़ी-दर-पीढ़ी, जो प्रयत्न होता आ रहा था, उस पर उसने गहरा चिंतन किया। उसने सोचा, पर यह महान लक्ष्य क्यों न पूरा हुआ? मानव के लिए यह कार्य क्या असाध्य है? ये प्रश्न उसे बेचैन करने लगे और एक दिन उसने तीन पीढ़ियों के अपूर्ण लक्ष्य को पूरा करने की भीषण प्रतिज्ञा कर ली। वह निस्संतान था, इसलिए शासन का भार मंत्रियों के हाथों में सौंप वन चला गया।

हिमालय के सघन वनों में उसने कठोर तपस्या की। दोनों हाथ सिर पर उठाये, आग की लपटों के बीच में वह खड़ा रहा। सूर्य की तेज किरणों ने उसे जलाया, लेकिन वह विचलित न हुआ। पंचाग्नि के मध्य घोर तपस्या करते हुए भगीरथ ने न कुछ खाया, न पिया। प्रारम्भ में वह महीने में दो बार जल मात्र पी लेता था। इस तरह कई वर्ष बीत गये। भगीरथ की तपस्या पर प्रसन्न होकर ब्रह्मा उसके समक्ष प्रकट हुए। भगीरथ ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की, "भगवान! ऐसी कृपा कीजिए कि जहाँ मेरे पितृ भस्माकार पड़े हैं, वहाँ पर देव नदी गंगा बह जाए ताकि उसके पावन जल के स्पर्श से पित्रों को मोक्ष प्राप्त हो। यही मेरी एकमात्र कामना है।"

"भगीरथ! तुम्हारी कामना पूरी होगी। लेकिन देव नदी गंगा

तपस्यारत मुनि कपिल मुनि ही थे। उनकी मुँदी हुई आँखें खुलीं नहीं। वस, उनके मुँह से हुँकार की ध्वनि उठी। अगले क्षण ६०,००० सगर पुत्र जलकर भस्म हो गये।

इधर काल का रथ-चक्र घूमता रहा, काफी समय व्यतीत हो जाने पर पुत्र न लौटे तो चिंतित सगर ने अपने पौत्र अंशुमान से कहा, "वेटा! तुम तो महावली व प्रतिभाशाली युवक हो। समस्त कलाओं के पंडित हो। तुम जाकर अपने चाचाओं का पता लगाओ।" अंशुमान निकल पड़ा। उसके चाचाओं ने मार्ग बना ही रखा था। उस पर चलना कोई कठिन कार्य न था। देवताओं ने भी इस तेजस्वी, वीर युवक की सहायता की। विघ्न-वाधाएँ अपने आप ही दूर होती चली गयीं। अष्ट दिक्पालों ने उसे आशीष दिया। लम्बी यात्रा के बाद अन्त में अंशुमान पाताल लोक पहुँचा।

उत्तर-पूर्व दिशा में तपस्यारत मुनि, अश्व व राख के ढेर के ढेर देखते ही वह वास्तविकता समझ गया। क्षण भर के लिए उस साहसी युवक का अजेय हृदय भी डोल गया। चाचाओं की दुर्गति पर वह रोया, चिल्लाया, लेकिन कोई लाभ न हुआ। आखिर उसने अपने मन को शान्त कर लिया। सोचा, चाचाओं को सद्गति देने के लिए उनकी अन्त्येष्टि क्रियाएँ कर दूँ। उसने चारों तरफ जल ढूँढ़ा। लेकिन कहीं भी एक बूँद पानी न मिल सका। तभी निराश व दुःखी अंशुमान के सम्मुख गरुड़ भगवान प्रकट हुए। बोले, "वत्स अंशुमान, दुःखी न हो। सब कुछ ईश्वर की इच्छा पर घटित होता है। इससे दुनिया की भलाई होने वाली है। अगर तुम इन्हें सद्गति देना चाहते हो तो तुम्हें हिमवान की पुत्री गंगा को इस धरती पर लाना होगा। लेकिन वह तो देवलोक की नदी है। आकाश-गंगा को धरती पर किस भाँति ला पाओगे? पर एक उपाय है। अश्वमेध का घोड़ा यहीं है। इस पर सवार होकर तुरन्त चलो। तुम्हारे दादा चिरकाल से प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

अंशुमान ने विवश होकर गरुड़ भगवान की बात मान ली और अश्वमेध घोड़ा लेकर अपने दादा के पास लौट आया। पौत्र द्वारा सारी स्थिति जानकर सगर बेहद दुःखी हुए। किसी तरह यज्ञ सम्पन्न हुआ। अंशुमान ने अपना प्रयत्न जारी रखा। मुझ गंगा को धरती पर लाने का प्रयत्न शुरू हो गया। इसी बीच सगर चल बसे। अंशुमान और उनके पुत्र दिलीप ने इसी कोशिश में जीवन अर्पित कर दिया। यज्ञादि किये गये, तपस्याएँ की गयीं, मगर कोई लाभ न मिला।

महाराजा दिलीप का एक पुत्र था – भगीरथ। पराक्रमी, बुद्धिमान व शीलवान। प्रजा के हितों का बड़ा ध्यान रखता था। उसके वंश में, पीढ़ी-दर-पीढ़ी, जो प्रयत्न होता आ रहा था, उस पर उसने गहरा चिंतन किया। उसने सोचा, पर यह महान लक्ष्य क्यों न पूरा हुआ? मानव के लिए यह कार्य क्या असाध्य है? ये प्रश्न उसे बेचैन करने लगे और एक दिन उसने तीन पीढ़ियों के अपूर्ण लक्ष्य को पूरा करने की भीषण प्रतिज्ञा कर ली। वह निस्संतान था, इसलिए शासन का भार मंत्रियों के हाथों में सौंप वन चला गया।

हिमालय के सघन वनों में उसने कठोर तपस्या की। दोनों हाथ सिर पर उठाये, आग की लपटों के बीच में वह खड़ा रहा। सूर्य की तेज किरणों ने उसे जलाया, लेकिन वह विचलित न हुआ। पंचाग्नि के मध्य घोर तपस्या करते हुए भगीरथ ने न कुछ खाया, न पिया। प्रारम्भ में वह महीने में दो बार जल मात्र पी लेता था। इस तरह कई वर्ष बीत गये। भगीरथ की तपस्या पर प्रसन्न होकर ब्रह्मा उसके समक्ष प्रकट हुए। भगीरथ ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की, "भगवान! ऐसी कृपा कीजिए कि जहाँ मेरे पितृ भस्माकार पड़े हैं, वहाँ पर देव नदी गंगा बह जाए ताकि उसके पावन जल के स्पर्श से पित्रों को मोक्ष प्राप्त हो। यही मेरी एकमात्र कामना है।"

"भगीरथ! तुम्हारी कामना पूरी होगी। लेकिन देव नदी गंगा

इस धरती पर आयेगी तो उसे कोई धारण नहीं कर पाएगा। वह वेगवती है। केवल शिव द्वारा ही यह संभव है। तुम उनकी तपस्या करो।" इतना कहकर ब्रह्मा अदृश्य हो गये।

भगीरथ ने हिम्मत न हारी। उसने पहले से अधिक घोर तपस्या की। एक पहाड़ी की चोटी पर जाकर वह दोनों अँगूठों के बल पर खड़ा होकर तपस्या करने लगा। न कुछ खाया, न कुछ पिया। केवल हवा उसका आहार था। रात-दिन बीतते गये। वह न हिला, न डुला। पाषाण मूर्ति-सा खड़ा रहा। आँधी, पानी, वर्षा या सर्दी कोई उसे विचलित न कर पाया। इसी तरह एक वर्ष बीत गया। सहसा एक दिन शिव उसके सामने प्रकट हुए, "भगीरथ! तुम उत्तम मानव हो। तुम्हारी धीरता पर मैं हर्षित हूँ। तुम्हारी कामना पूरी होगी। हिमवान की पुत्री गंगा को मैं अपने जटाजूट पर धारण कर लूँगा।"

सुना आपने? शिव जटाजूट पर धारण कर लेंगे—हूँ……मुझे धारण करना, मेरे वेग को सँभालना इतना आसान है क्या? मन ही मन मैं झल्ला उठी। मुझे न कोई रोक सकता है, न सँभाल सकता है। सोचा, शिव को परास्त कर, इस धरती को भेद कर पाताल में चली जाऊँगी। बस! पूरे वेग से उमड़ पड़ी मैं। मेरा उन्मत्त प्रवाह शिव के जटा भार से टकराया। शिव ने अपना जटाजूट खोल दिया। आसुरी वेग से मैं बिखरी जटाओं में घुस पड़ी।

क्या कहूँ? गहन-गह्वर-सी उस जटाजूट में ऐसी उलझ गयी कि निकलने का मार्ग न मिला। मैं उद्भ्रांत हो उठी। तूफान-सा मेरा वेग एकदम शांत हो गया। मैं दिग्भ्रांत रह गयी। मेरा सारा गर्व चूर-चूर हो गया। शायद शिव ने मेरे गर्व-भंग के लिए ही अपने जटाजूट में मुझे उलझा दिया था। उधर मैं छटपटाती रही, इधर बेचारा भगीरथ मेरी प्रतीक्षा करता रहा। अन्त में उसे सही स्थिति का पता लग गया। वह निराश न हुआ। उसकी एक और तपस्या

प्रारम्भ हो गयी। भगीरथ की धीरता, सहिष्णुता व लगन पर शिव सदय हो उठे।

ब्रह्मा ने मानसरोवर की सृष्टि की थी। शिव ने अपने जटा-भार से मुझे सरोवर में बहने दिया। जटाओं से मुक्त मेरा प्रवाह सप्त धाराओं में बँट गया। उसमें तीन नदियाँ पूरब की तरफ, तीन पश्चिम की तरफ बहने लगीं। सातवीं धारा के रूप में मैं भगीरथ के पीछे चल पड़ी।

भगीरथ का रथ आगे-आगे जा रहा था। मैं उसका अनुसरण कर रही थी। देवगण, मानवगण सब के सब विस्मय-विमुग्ध दृष्टि से मेरे लहराते प्रवाह को देख रहे थे। बड़ा शोर मचाता हुआ मेरा प्रवाह उमड़ रहा था। विविध प्रकार की मछलियाँ, मगर, कछुए, हंस आदि जल-जंतु मेरी धारा से निकलते जा रहे थे। शरतकालीन निरभ्र आकाश-सी निर्मल जलधारा दर्शकों को अभिभूत कर रही थी।

स्वभाव से मैं बड़ी अभिमानिनी हूँ। आप ही कहिए, इसमें क्या हर्ज ? मैं रूपसी हूँ। शक्ति सम्पन्न हूँ। कौन ऐसा है, जो मेरी धारा को रोक सके ? ऐरावत के गर्व को मैंने चूर-चूर कर दिया था न ? भगीरथ के पीछे मैं शांत व भीरू बनकर न आयी। प्रलय वेग के साथ अट्टहास करती आयी। लहरों रूपी हाथों को मारती, हुंकार भरती रही। जो भी हाथ आया, छिन्न-भिन्न कर फेंक दिया। जो भी सामने पड़ा उसे ढहाती, गिराती, हलचल मचाती आगे बढ़ी। जहाँ चाहे उमड़ पड़ी। लोग त्रस्त व आतंकित हो उठे।

चलते चलते हमारे मार्ग पर एक तपोवन आया। जह्नु मुनि वहाँ तपस्या कर रहे थे। मैं बड़े-बड़े पहाड़ों, जंगलों व वनों को पार करती आयी थी, मेरे लिए यह तपोवन क्या था ? जरा भी न हिचकी। फेन उगलती उमड़ पड़ी। मेरा गर्जन सुनते ही मुनि का ध्यान भंग हुआ। उनकी पलकें धीरे से खुलीं। मंद मुस्कान के साथ उन्होंने मेरी तरफ

देखा। मैंने उनकी बिल्कुल परवाह न की। अगले पल उन्होंने अपना दाहिना हाथ बढ़ाकर मेरे किंचित् जल से आचमन किया और फिर से ध्यान मग्न हो गये।

ओह ! यह क्या हो गया ? पल भर में मेरी प्रलय-सी बाढ़ व आसुरी वेग जाने कहाँ गायब हो गया था ? मैं चकरायी। ओह ! मैं तो उनके अन्दर समाहित-सी हो गयी। मैं घबड़ा उठी। सारा दर्प कुचल दिया गया। अब क्या करूँ ? निकलने का रास्ता न मिला। बेचारा भगीरथ ! यह सब क्या जानता ? वह तो आगे जा रहा था। लहरें उछालती मेरी अपार बाढ़ को मुनि ने बूँद बनाकर पी लिया है, यह उसे ज्ञात न था। थोड़ी दूर जाने के बाद ही उसे ज्ञात हुआ कि मैं उसके पीछे नहीं आ रही हूँ। वह लौटा। तपोवन, उसमें ध्यानावस्थित मुनि, यह सब देखते ही वह वस्तुस्थिति समझ गया।

कितनी बड़ी तपस्या व अथक परिश्रम से उसने मुझे प्राप्त किया था। इस हालत में भी उसने हिम्मत न हारी। मुनि के चरणों में पड़कर अनुनय-विनय करने लगा। अन्त में मुनि का हृदय पसीजा। बोले, 'हे गंगा ! बाहर निकल आ।' यह कहते हुए उन्होंने अपना दायाँ कान झुकाया कि मैं उनके कान से बाहर वह निकली। जह्नु मुनि के कान से निकलने के कारण मुझे 'जाह्नवी' का नाम मिला।

इसके बाद भगीरथ का अनुकरण करती हुई उस जगह पर पहुँची, जहाँ पर ६०,००० सगर-पुत्र राख के ढेरों में पड़े थे। मेरी जलधारा ने राख के ढेरों को भिगो दिया। राख बने शापित ६०,००० सगर-पुत्रों ने सद्गति प्राप्त की। भगीरथ के आनन्द का ठिकाना न रहा। मेरी जलधारा में स्नान कर उसने अपने पुरखों की अन्त्येष्टि क्रियाएँ पूरी कीं। जो कार्य उसके पिता व दादा से सम्भव न हुआ, उसे भगीरथ ने अपने अदम्य संकल्प व कर्तव्यनिष्ठा से पूरा करके दिखाया। यह संसार उसे कभी भूल न सकेगा। उसकी लगन को

'भगीरथ-प्रयत्न' कहने में आश्चर्य कैसा ? भगीरथ मुझे धरती पर ले आया था न ? इसलिए मेरा एक नाम 'भागीरथी' भी पड़ा। देवलोक से धरती पर आकर मैं भगीरथ के देश में तीन धाराओं में बँटकर बहने लगी। भगीरथ का राज्य धन-धान्य से लहलहा उठा। लोग सुखी रहे। कहीं अभाव का नाम न था। विष्णु पुराण में भी मेरी जन्म-कथा का वर्णन इन शब्दों में—

हे मैत्रेय ! गंगा की कथा सुनाता हूँ, सुनिए :

मेरु पर्वत पर १४ योजन का विस्तीर्ण ब्रह्मा का सुन्दर नगर है। उसके चारों ओर अष्ट दिक्पालों की वर नगरियाँ हैं। विष्णु भगवान के चरण कमल से निस्सृत गंगा, आकाश एवं चन्द्र मंडल का सिंचन करती हुई, मेरु पर स्थित ब्रह्मा जी की राजधानी के चारों तरफ, 'सीता', 'अनन्दा', 'चक्षु', 'महा' के नाम से बहती है।

सुनो मैत्रेय ! विष्णु के चरण कमलों की महिमा की गाथा सुनो। इन चरण कमलों से ही पतित पावनी, अघनाशिनी गंगा नामक देव नदी उत्पन्न होती है। द्रव्यों व कुंकुम, चंदन के लेपन से युक्त देव कन्याओं के स्नान करने से यह नदी सुनहली धारा-सी दमक उठती है।

भगवान विष्णु के बाएँ चरणकमल के अंगूठे के नख से उत्पन्न गंगा अत्यन्त पवित्र है। उसके जल से सिंचित होने के कारण चंद्र मंडल रात में कांतियुक्त दीखता है। इस मर्त्य लोक के मालिन्य को मेटने उतरी अनंदा रूपी गंगा को शिव ने बड़ी श्रद्धा से अपने जटा-भार में धारण किया है। शिव के जटाजूट से नीचे प्रवाहित होकर इस नदी ने सगर पुत्रों को मोक्ष प्रदान किया है। यह बड़ी महिमा-मयी है। इसके जल में गोता लगाने से समस्त पाप नष्ट हो जायेंगे। इसकी धारा में स्नान करने वाले पापमुक्त होकर सुखी रहेंगे।

मेरे बारे में और भी कई रुचिकर बातें हैं; यथा :

सरस्वती, लक्ष्मी, और मैं, भगवान की प्रिय देवियाँ थीं। हम तीनों के प्रति उनका स्नेह था। हम तीनों में लक्ष्मी बड़ी शांत प्रकृति

की थीं। कभी क्रोधित न होतीं। किन्तु सरस्वती वैसी नहीं थीं। वे चंचल और उदण्ड थीं साथ ही ईर्ष्यालु भी। तिस पर मुझे फूटी आँख न देखतीं। भगवान मेरे प्रति थोड़ा सा स्नेह दिखाते तो वह तिलमिला जातीं। एक बार किसी बात पर क्रोधित होकर उसने मुझे नदी बनने का शाप दे दिया। पर मैं कहाँ हारने वाली थी। मैंने भी उसे शाप दे दिया : "तुम भी धरती पर नदी बन जाओ।" हम दोनों को झगड़ता देखकर बेचारी लक्ष्मी हमें शांत करने आयीं तो सरस्वती ने उन्हें भी शाप दे दिया। इतने में भगवान वहाँ पर आये। सारा हाल जानकर उन्होंने मुझसे कहा, "गंगा ! तुम भगीरथ की तपस्या पर धरती में उतर जाओगी और भागीरथी के नाम से भारत देश में प्रवाहित होकर, अघनाशिनी बनोगी। तुम्हारा बड़ा नाम होगा। लोग तुम्हारा यश गायेंगे। महाराजा शांतनु और समुद्रराज जो मेरे ही एक अंश हैं, तुम्हारे नायक बनेंगे। त्रिभुवन तुम्हारी महिमा से पावन बनेगा। शिव अपने जटाजूट में तुम्हें धारण करेंगे।" भगवान की कृपा से मैं भागीरथी बनी, सरस्वती, सरस्वती नामक और लक्ष्मी पद्मा नामक नदी बनी। वे तुलसी पौधे के रूप में विद्यमान रहती हैं।

मैं बड़ी सुन्दर हूँ। श्वेत कमल-सी गोरी, मेरी कान्ति, शरत्-कालीन चाँदनी-सी मनोहर है। घुँघराली अलकें, प्रवाल से लाल अधर, मोती सी चमकीली दन्त-पंक्तियाँ, नीलोत्पल्ल-सी आँखें, कोमल कमनीय शरीर और लाल कमल से मेरे चरणों की शोभा पर, भगवान आसक्त हों तो आश्चर्य कैसा ?

त्रिपतागँ का नाम मुझे कैसे मिला ? इसकी एक कहानी है— कार्तिक पूर्णिमा का दिन था। राधा का उत्सव चल रहा था। कृष्ण भगवान ने उसकी पूजा की। ब्रह्मादि देवता भी इस उत्सव में भाग लेने आये थे। मैं नदियों की देवी थी न ? इसलिए मैं भी वहाँ पर उपस्थित थी। कृष्ण के अद्भूत सौन्दर्य ने मुझे मोह लिया। मैं आत्म-विस्मृत हो गयी। मोहासक्त खड़ी मुझे राधा ने देख लिया तो मैं

घब्ड़ा उठी। अपने प्रिय पर मोहित मुझे देखकर न जाने क्या करेगी……इस भय से मैंने कृष्ण की शरण ली। भगवान ने मुझे अपने चरण कमलों में स्थान दे दिया। मैं अदृश्य हो गयी। राधा ने मुझे ढूँढ़ा। देवतागण मुझे कहीं न पाकर अन्त में कृष्ण के पास आये। मैं देवलोक की नदी हूँ न ? कृष्ण ने मुस्कराते हुए कहा, "गंगा ! बाहर आओ।" झट मैं उनके अंगूठे से निकल पड़ी और अबाध गति से बहने लगी।

2

इस धरती को जीवन प्रदान करने मैं उतर आयी। इस धरती पर अब तक मैं जानें कितने जीवन के कितने ही रूप देख चुकी हूँ। मानव जीवन के इतिहास में पानी का स्थान महत्वपूर्ण है। इसे कोई इन्कार नहीं कर सकता। 'बिन पानी सब सून।' नदियाँ, झरने, नाले व प्रपात ईश्वर की करुणा की अनन्त धाराएँ मानी जाती हैं। नदियाँ ही मानव जीवन व समाज की पोषक तत्व हैं। वेद नदियों का यश गाते हैं।' जल के विविध उपयोगों का वर्णन करते हैं।

तो आर्यावर्त कहे जाने वाले इस मध्य देश में बहने लगी। मेरी

शाखाओं ने इस भू-भाग को समृद्ध किया। मेरी और मेरी बहिन यमुना के बीच का दोआब अति उपजाऊ बन गया। इस दोआब की सभ्यता सिन्धु घाटी की सभ्यता, संस्कृति व समृद्धि से श्रेष्ठ मानी जाने लगी। वेदकालीन आर्यों का जीवन इसी भूभाग में फला-फूला था। इसकी अद्वितीय सुगंध से दूर-दूर तक का वातावरण गमकने लगा।

यह भारत देश अत्यन्त विस्तृत है। भिन्न-भिन्न धर्म और भाषा के लोग यहाँ निवास करते हैं। इसकी प्राकृतिक रचना कितनी निराली है। उत्तर में हिमालय बड़ी शान से सिर ऊँचा किये खड़ा है। भूटान और नेपाल इसकी गोद में किलककारियाँ भर रहे हैं। दक्षिण में हिन्द महासागर, भारतमाता के चरण कमलों को पखार रहा है। पूरब में बंगाल की खाड़ी, और बंगाल देश इसकी सीमाएँ हैं। पश्चिम में अरब सागर और पाकिस्तान हैं। पहाड़, पर्वत और नदियाँ इस देश को कई भागों में विभाजित करते हैं। इस सुरम्य देश को प्राकृतिक दृष्टि से हिमालय प्रदेश, सिन्धु-गंगा मैदान, दक्षिणी पठार इस तरह तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं।

हिमालय की लम्बाई २४०० किलोमीटर, औसत ऊँचाई ६०० मीटर है। इसके चौंतालीस शिखरों की ऊँचाई ७,००० मीटर से अधिक है। हिमालय की चौड़ाई २४० किलोमीटर से लेकर ४०० किलो मीटर तक हो सकती है। एवरेस्ट की ऊँचाई ७,७४७ मीटर है। कांचन-जंघा ७,५७५ मीटर, धवलगिरि ७,१६८ मीटर, नंदा देवी ७,०६७ मीटर हैं। यह पर्वतमाला पश्चिम से पूरब की तरफ धनुषाकार फैली पड़ी है। पूरबी छोर पर पटकोई, नागा, लुसाई जैसे पर्वत तने से इधर-उधर फैली विशाल शाखाओं से लगते हैं। गारो, खासिया, जयन्तिया इसकी उपशाखाएँ हैं। ये सघन वनों से छाये रहते हैं। इन्हें मेघालय कहते हैं।

पश्चिमी छोर पर सुलमान, बुद्धि, गिरदार आदि पहाड़ इसी से छूते हैं। इसके उत्तरी हिस्से पर बड़ी-बड़ी घाटियाँ हैं। हिमालय का पंजाब-हिमालय, कुमायूँ-हिमालय, नेपाल-हिमालय, आसाम-हिमालय, के रूप में भी प्राकृतिक विभाजन किया गया है। दुर्भेद्य पर्वतीय दीवार के रूप में खड़े हिमालय के ऊँचे शिखर सदैव हिमाच्छादित रहते हैं। ये बड़े दुर्गम हैं। इसके दक्षिणी ढाल पर छोटे-छोटे पर्वत व पहाड़ी मालाएँ हैं। शिवालिक श्रेणी को 'बाह्य हिमालय' कहते हैं। इसकी ऊँचाई १,५०० मीटर से अधिक नहीं। यह श्रेणी हरे-भरे जंगलों से भरी है। बीच-बीच में जो चौरस घाटियाँ हैं उन्हें 'दून' कहते हैं। शिवालिक की तराई में छाये हुए घने जंगलों में वन्य पशुओं का संचार अधिक है। १,५०० मीटर की ऊँचाई तक घना वन प्रदेश है न ? यह वनस्थली सब तरह से प्रयोजनवती है। कच्चा माल, खनिज सम्पत्ति, जड़ी-बूटियाँ, अमित राशि में यहाँ पर मिलते हैं। १,५०० मीटर के ऊपर ३०,००० मीटर तक हलके वन और हरियाली छायी रहती है। यहाँ भी साल में दो-तीन महीने बरफ पड़ती है। इसकी प्राकृतिक सुषमा मनमोहक है। निचले प्रदेश के वनों में साइ-प्रस, गुलबेरी, ओक, साल, सवेता, बीतार, अखरोट आदि के ऊँचे-ऊँचे वृक्षों की सघनता व्याप्त है। इन गगनचुंबी वृक्षावलियों को देखते समय लगता है, मानो वे पर्वतराज हिमवान को चाँवर डुला रहे हों और वनस्थलियाँ रंग-बिरंगे फूल चढ़ाकर उसके चरणों को पूज रही हों।

हिमालय विदेशियों को आसानी से हमारे देश में प्रवेश करने से रोकता ही नहीं, मध्य एशिया से बहती सूखी ठण्डी हवा को भी इस देश में आने से रोक देता है। साइबेरिया में घोर ठण्ड होती है। यहाँ से बहती ठण्डी हवा के झोकों कौ यदि हिमालय की अभेद्य-दीवार न रोकती तो हमारी बड़ी हानि होती। इसके अतिरिक्त

ये शिखरें मानसूनी हवाओं और बादलों को भी रोक देती हैं। हमारे देश में, इसी के फलस्वरूप मानसूनी वर्षा खूब हुआ करती है।

हिमालय की उत्पत्ति की कथा भी बड़ी रोचक है। क्षीरसागर के मंथन की कथा विख्यात है। देव और असुरों ने मंथर पर्वत को मथ और वासुकि सर्प से रस्सी बनाकर क्षीरसागर का मंथन करने लगे। भगवान विष्णु ने कच्छप का रूप लेकर मंथन पर्वत को अपनी पीठ पर धारण किया। वासुकि की पूँछ को देवों ने और मुख को असुरों ने पकड़ लिया। समुद्र मंथन के समय सागर से हलाहल विष, चन्द्र, कामधेनु, कल्पवृक्ष, रंभा, शंख, महालक्ष्मी, गौस्तुप, वारुणि, अवैड अश्व, एरावत, धनुष, धनवंत्री और अमृत आदि प्रकट हुए। सब के अन्त में हिमालय निकल पड़ा।

आज की दुनिया का रूप युगों के पहले बिल्कुल भिन्न था। जहाँ पर आज हिमालय खड़ा है, टेथीज़ सागर लहरें मार रहा था। करोड़ों-करोड़ों सालों के पहले की बात है यह। एक महान प्रलय हुआ। उसने इस देश के भौगोलिक ढाँचे में भारी परिवर्तन ला दिया। भूगर्भवेत्ता इसके कई कारण बताते हैं। हमारा वेद, पार्सियों का अवेस्ता इस संसार के अति प्राचीनतम ग्रन्थ हैं।

सुवेस्ता में वर्णित एक कहानी इस प्रकार है—पार्सियों के प्रधान देवता का नाम था अहूरमज्द। इस देवता ने मानव के लिए सोलह भुवनों की सृष्टि की। लेकिन दुर्देवता 'अगरमन्यु' ने, तूफान, बवंडर और बरफ की वर्षा से इन देशों का नाश कर दिया। विवश होकर लोगों ने उन देशों को त्याग दिया और बाहर निकल आए।

अहूरमज्द ही आर्य जाति के जन्मदाता थे। अगरमन्यु के आक्रमण के पहले ही उन्होंने जनता की सभा बुलायी। इसमें आलयत्रा-वेजो का राजा विवन्ध्वत का पुत्र 'इयम' भी आया। अहूरमज्द ने अगरमन्यु द्वारा जो आफत आनेवाली थी, उसकी पूर्व सूचना दी। मानव जाति मूल से नष्ट न हो जाए, इस चिन्ता से उन्होंने मानव,

वनस्पति, जीव-जंतु, सचर, अचर सब के बीज बिन्दुओं को एक जगह पर सुरक्षित रख दिया था।

आँधी आयी। घोर तूफान चला। प्रलय लहरा उठा। सुख व ससृद्धि से जो देश लहलहा रहे थे, मिट्टी में मिल गये। भयंकर नाश हो गया। प्रलय का वर्णन इस ग्रन्थ में वड़े विस्तार से सुनाया गया है।......यही नहीं, शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थ में भी इस प्रलय का वर्णन पढ़ा जा सकता है। मत्स्यपुराण, भागवत, महाभारत में भी इसका जिक्र है। प्रलय के बारे में हमारे देश में प्रचलित कथा सुनिए न ?

एक दिन उदय काल की बेला में, वैवस्त मनु सागर में स्नान कर रहे थे कि उनके हाथ में एक मछली फँस गयी। मछली ने मनु से अपने को जीवित छोड़ देने की प्रार्थना करते हुए कहा, "एक महान प्रलय आने वाला है। यह सारा संसार उस प्रलय में बह जाएगा। अब आप मुझे जिन्दा छोड़ दें तो प्रलय के समय मैं आपकी मदद करूँगी।" मनु ने मछली की बातों पर विश्वास कर उसे फिर से सागर में छोड़ दिया। मछली ने यह भी कहा था कि वे प्रलय से बचने के लिए एक नाव बनाकर रखें तो अच्छा होगा।

कुछ समय वीत गया। एक दिन एकाएक भारी वर्षा हुई, और प्रलयंकारी बाढ़ उमड़ पड़ी। मछली के सुझाव पर मनु ने नाव तैयार कर रखी थी। तुरन्त नाव में बैठ गए। पृथ्वी हिल उठी। सागर उफन आया। इस जल-प्रलय में कोई न बचा। मछली अपना वायदा न भूली। नाव की डोर को मुँह में लिए हुए उसे खींचती ले गयी। तूफानी लहरों को चीरती हुई नाव उत्तर की दिशा की ओर बढ़ी। बहुत दूर जाने के उपरान्त मछली ने नाव को एक पेड़ से बाँधने को कहा। वहाँ पर बाढ़ उतरने लगी। इस तरह मनु की जान बची।

सारा संसार मिट गया। सृष्टि का नाश हो गया। अकेले मनु, मानव कुल के विकास के लिए यज्ञादि करने लगे। अन्त में 'इड़ा'

नामक नारी का उदय हुआ। इसके बाद धीरे-धीरे मानव कुल का विकास होने लगा। सृष्टि फिर से हुई। प्रकृति लहलहा उठी। सचर, अचर, सब का नव विकास हुआ। घास-फूस उगे। चिड़ियाँ चहचहा उठीं। वन्य जन्तुओं का जन्म हुआ। वनस्पतियाँ खिल उठीं। मनु से मानव कुल का जन्म हुआ।

भूगर्भवेत्ताओं का विचार है कि उस समय जहाँ पर आज उत्तर भारत है, वहाँ केवल टेथीज़ सागर था। पंजाब, उत्तर प्रदेश, बंगाल, कुछ भी नहीं। उत्तरी हिस्से का यह सागर विशाल भूमध्य सागर का एक अंश था। इस डेरा में टेथीज़ की दक्षिणी सीमा आरावली और विन्ध्य पहाड़ी मालाएँ थीं। विन्ध्य और सतपुड़ा पहाड़ियाँ, हिमालय के पूर्वकालीन हैं।

भूगर्भीय हलचलें होती रहती हैं जिनके फलस्वरूप भूगर्भ से लावा निकल कर सतह पर आती है। ऐसे एकत्रित मलवे धीरे-धीरे ऊपर उठते हैं। पर्वतों का निर्माण इसी तरह शनैः शनैः होता रहता है। लेकिन ये सब एक ही दिन में घटित नहीं होते। इसमें करोड़ों वर्ष लगते हैं। टेथीज के धरातल में भी ये परिवर्तन होते रहे। टेथीज क्रमशः छिछला होता गया और हिमालय ऊपर उठने लगा। इसका उत्थान करोड़ों वर्षों में पूरा हुआ। हिमालय की श्रेणियों के निर्माण के उपरान्त ही पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार और बंगाल आदि का उदय हुआ। हिमालय के बरफीले शिखरों से मैं, ब्रह्मपुत्र, सिंधु जैसी नदियाँ उत्पन्न हुईं। हमें 'हिमनद' भी कहते हैं। भूगर्भीय दृष्टि से इसके 'तिब्बती क्षेत्र', हिमालय क्षेत्र, उपहिमालय क्षेत्र—ऐसे तीन विभाग किये गये हैं। भौगोलिक दृष्टि से, वृहद हिमालय, लघु हिमालय, बाह्य हिमालय ऐसे तीन विभाजन हैं।

आसाम को हिमालय का सिरो भाग कह सकते हैं। यहाँ पर ऊँचाई कम होने पर भी जटाजूट से सघन वन हैं। नेपाल ही हिमालय

का सबसे ऊँचा प्रदेश है। यहाँ पर श्रेणियों के बीच में दरारें हैं। हिमालय की ऊँची चोटियाँ, एवरेस्ट, कंचनजंगा, धौलगिरि आदि यहाँ पर हैं। कुमाऊँ हिमालय सतलज से लेकर नेपाल के काली नदी तक व्याप्त है। यहाँ पर सबसे ऊँची चोटी नन्दा देवी की है। मेरी और यमुना के मैदान के निवासियों के लिए उत्तराखण्ड का यह पुनीत प्रदेश है। यह ३२५ किलोमीटर लम्बा है। बद्रीनाथ, केदारनाथ, त्रिशूल, मेरी व यमुना के उद्‌गम स्थान, यहीं हैं। शिमला, मसूरी, नैनीताल, अलमोड़ा आदि पहाड़ी नगर यहीं पर हैं। पंजाब हिमालय, पश्चिमोत्तर में सिंधु नदी की घाटी से लेकर सतलुज की घाटी तक व्याप्त है। यहाँ पर पहाड़ी चोटियाँ अधिक ऊँची नहीं हैं। इसके दक्षिणी ढालों पर जंगल हैं। उत्तर में काश्मीर, ४८० मीटर की ऊँचाई से शुरू होती है। यह पर्वतमाला, जिसे 'मेरुदण्ड' कहते हैं, पहले दक्षिण-पूरब, फिर पूरब की तरफ चलती है। ये श्रेणियाँ पश्चिम की तरफ ऊँची और पूरबी तरफ अपेक्षाकृत नीची हैं।

हिमालय की गंभीर आकृति, कवियों को विस्मय-विमुग्ध कर देती है। गहन गंभीर, भव्य गिरि-शृंगों को देखकर वे कहते हैं—

हे हिमालय! तुम धन्य हो। गगनचुम्बी उत्तुंग शिखरों के जैसा तुम्हारा हृदय भी ऊँचा व महान है। तुम्हारी गोद से निःसृत नदियों से यह भारत देश हरा-भरा रहता है। पाताल तक व्यात धरती को तुम अपने भार में दबा रहे हो। शेषनाग जो कमलनाल सा अपने फ़णों में इस धरती को धारण कर रहा है, तुम्हारे भार से धँसता है।

पतित पावन जल-स्रोत अपनी अजस्त्र धाराओं से इस भारत भूमि को महिमामय सिद्ध कर रही हैं।'

हाँ—भगवान विष्णु के चरण कमलों से उदित होने की विशिष्ट कीर्ति प्राप्त, मैं इस बात पर गर्व करती हूँ कि मेरा उद्‌गम स्थान हिमालय के उत्तुंग शिखर पर है।

हिमालय से लेकर बंग सागर में संगमित होने तक मेरी कथा काफी लम्बी है।

●

3

किसी भी देश की आर्थिक उन्नति में हम-नदियों का महत्व कम नहीं होता। आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक इतिहास में भी हमारा स्थान मुख्य होता है। हम नदियों के तट पर कितने ही नगर, नगरियाँ आबाद हुईं और काल के बहाव में बहती गयीं।

भारत के विशाल, उन्नत वक्षस्थल पर, मोतियों की उज्ज्वल माला-सी लहराती मेरी जलधारा, भारत की संस्कृति, उसके धार्मिक विश्वासों व विशिष्ट संस्कारों की अविरल धारा है। जिस तरह असंख्य धाराएँ मुझमें मिलकर अपना स्वत्व खोकर मुझमें एकाकार हो पुनीत बनती हैं, उसी तरह यह भारतीय संस्कृति विभिन्न संस्कृतियों व सभ्यताओं का सुन्दर समन्वय है।

मेरे उद्‌गम स्थल को लेकर अनेक मत हैं। गंगोत्री की यात्रा करने वाले श्रद्धालु यात्रीगण उसे ही मेरा उद्‌गम स्थल मानते हैं। गंगोत्री के ऊपर गोमुखी तक, जहाँ मैं पहले-पहल दृष्टिगोचर होती हूँ, पहुँचना कठिन है। वहाँ सर्दी बहुत है। न कोई मार्ग है, न पगडंडी। इसी नीरव, एकांत स्थान में मेरा प्रथम दर्शन होता है न ? इसीलिए इसे मेरा उद्‌गम स्थल माना जाता है। किन्तु वास्तविकता कुछ और है। इसके भी ऊपर हिमानी चट्टानों पर मेरा रहस्यमय उद्‌गम है। काफी कड़ी चढ़ाई के कारण वहाँ तक पहुँचना असंभव-सा है।

कैलाश शिव का निवास-स्थान माना जाता है। वह गोमुखी से लगभग सौ किलोमीटर की दूरी पर है। कैलाश की तलहटी में मानसरोवर

है। कुछ लोगों का विचार है कि मैं इस मानसरोवर से निकलती हूँ, लेकिन यह भ्रम है। गोमुखी और मानसरोवर के बीच में किसी भी जलधारा या स्रोत के दर्शन नहीं होते। इसके अलावा इन दोनों के बीच में एक पर्वतमाला है, जिसमें 'निति' व 'माना' नामक दो प्रसिद्ध दर्रे हैं। इनसे धौली और अलकनन्दा उत्पन्न होती हैं। मानसरोवर और इन नदियों के बीच में भी कोई सम्बन्ध नहीं। कोई नदी या नाला भी इन्हें इस रम्य सरोवर से नहीं जोड़ता।

घने वन, जल प्रवाह और बाढ़ को रोकने में समर्थ हैं! ऊँची हिमानियों से पिघलती धारा पहाड़ों के तेज ढालों पर पूरे वेग से बह निकलती है, लेकिन उतारों में मंडित घनी झाड़ियों और जंगलों में प्रवाहित होते ही वे अपना वेग खो दें तो आश्चर्य कैसे?......

पुराणों में वर्णित कथा को याद कीजिए--शिव की जटाजूट में उलझी मैं कोई मार्ग न पाकर कितनी तेजहीन हो जाती हूँ? ओह! कैसा भव्य चित्र है यह! हिमालय जटाजूटधारी शिव हैं और लहरें उठाती आती मैं, उनके जटा-भार से अविरल धारा-सी बहती हिम-स्रोत हूँ। सघन वनस्थलियाँ बिखरी हुई लटें हैं। कैसी मनोमुग्धकारी व्यापक कल्पना है यह।

मानसरोवर गढ़वाल की सीमा के अन्तर्गत है। गढ़वाल शब्द का अर्थ है जंगलों से भरा भू-भाग। पहाड़ों और टीलों से भरे इस प्रदेश में जनसंख्या अधिक नहीं। यहाँ बहती हर नदी से मेरा नाम जुड़ा रहता है। यहाँ का इतिहास प्रागैतिहासिक काल का है। कवि कालिदास ने गंधर्व व किन्नरों की भूमि कहा है न? तुषारमंडित पर्वत मालाएँ, गहरी घाटियाँ, दीर्घकाय वृक्ष, मरकत की चादर-सी फैली हरियाली, कल-कल ध्वनि करते पहाड़ी झरने, मनोहर प्रपात—ये सब एक अतीन्द्रिय जगत में ले जाते हैं।

नीले रेशम के वितान-सा खुला नीलाकाश, हरी मखमल की

दुकूल से सज्जित पृथ्वी के अनूठे सौन्दर्य का दर्शन कर हृदय आनन्द से स्पन्दित हो उठता है। यह स्मृति सदा अक्षय रहती है। गढ़वाल से रामनगर व नैनीताल तक साल वृक्षों के गहन वन भरे पड़े हैं। कतारों-कतारों में खड़े ऊँचे-ऊँचे वृक्ष और उनके बीच स्वच्छन्द विचरते वन्य पशु हैं।

गढ़वाली लोग बड़े सरल और सीधे हैं। उनका जीवन सादा है। इनमें ज्यादातर लोग हिन्दू हैं। इन्हें भोटिया कहते हैं। इनक रीत-रिवाज, रहन-सहन, अन्य हिन्दुओं से भिन्न हैं। यहाँ के पहाड़ी लोग भेंड़-बकरियाँ पालते हैं। वे घुमक्कड़ भी हैं। जाड़े में नीचे उतर आते हैं और डेरा डालकर रहते हैं। जीवन-यापन के लिए ऊन की कताइ-बुनाइ तथा व्यापार भी करते हैं।

मानसरोवर और उत्तरी कैलाश तिब्बत में हैं। इनको मानस खण्ड और कैलाश खण्ड कहते हैं। पूरब, पश्चिम में ३२० किलोमीटर, उत्तर-दक्षिण में १६० किलोमीटर इसका विस्तार है। कैलाश के हिमालय की उन्नत शिखरों में गणना है। इसकी ऊँचाई २,१०० मीटर है। समुद्र-तल से यह ६६०७ मीटर की ऊँचाई पर है। तिब्बत बौद्ध, जैन, हिन्दू सब के लिए यह एक पुनीत क्षेत्र है। मानसरोवर को बिन्दु सरोवर भी कहते हैं।

मानसरोवर की एक बार परिक्रमा करने में छह दिन लगते हैं। लगभग पैंसठ किलोमटर का घेरा है। कैलाश और कुर्ला पर्वतों के बीच स्थित है ३२० किलोमीटर वर्ग किमी विस्तार वाला यह सरोवर मुग्ध कर दनवाला है। इसके किनारों पर छोटी-मोटी लहरें उठ-उठ कर तट पर टकराती रहती हैं। चारों तरफ व्याप्त उस अलौकिक मौन में किनारों पर ताल देती लहरियों का गान स्वर्गिक-आनन्द की अनुभूति कराता है। हीरक मणियों सी उज्ज्वल दो पहाड़ियों के बीच में यह मानसरोवर हीरे की वेदी पर जड़े हुए मरकट मणि-सा शोभित है। इसके निर्मल विस्तार पर प्रतिफलित नीलाकाश यह भ्रम उत्पन्न

करता है कि आकाश धरती पर उतर आया है। कवियों ने इसके सौन्दर्य का गान किया है। योगी व तपस्वी यहाँ अलौकिक शान्ति प्राप्त करते हैं। यह दैवी सरोवर माना जाता है। व्यथित चित्त व व्याकुल मन इसका दर्शन करते ही असीम शांति का अनुभव करें तो क्या आश्चर्य ?

इस सरोवर में एक और विशेषता है। तट से ३० मीटर की दूरी तक ही लहरें उठती हैं। सरोवर का मध्य भाग बिलकुल निश्चल व नीरव है। यहाँ पर लहरें कभी नहीं उठतीं। जाड़े के दिनों में भी सरोवर के मध्य भाग का पानी जमता नहीं है। तरल बना रहता है। यहाँ हंसों की कतारें मन मोह लेती हैं, यहाँ से आठ किलोमीटर की दूरी पर एक और बड़ी झील है। इसे राक्षसताल कहते हैं। ३२० किलोमीटर घेरे वाली ४५ मीटर गहरी इस झील के पानी में वेग अधिक है। मानसरोवर से यात्रा बड़ी कठिन है, इसलिए अधिकांश यात्री यहाँ तक आने का साहस नहीं कर पाते।

गढ़वाल के उत्तरी-पश्चिमी हिस्से पर एक गोहना झील है। यात्री इसका दर्शन कर तृप्त हो जाते हैं। इस झील की उत्पत्ति एक रोचक व रोमांचकारी घटना से कम नहीं है। सन् १८९३ ई० में गोहना गाँव के निकट एक पहाड़ एकाएक ढहकर बिखर गया। इससे बिरही गंगा का प्रवाह लगभग एक साल तक रुका रह गया। इस अप्रत्याशित विस्तार से न जाने कितने टीले और चट्टानें चारों तरफ छितरा गयीं। भूमि हिल उठी। प्रकृति के संकेत मात्र से बिरही गंगा पर बाँध बना। प्राकृतिक ढंग से बनी इस झील की गहराई ९० मीटर थी। इसका विस्तार लगभग पाँच किलमीटर का था। झील बिरही गंगा के पानी से भरता ही गया। लबालब भर जाने पर एक दिन बाँध टूट गया और बिरही गंगा उन्मादिनी-सी बेरोक-टोक बहने लगी। गढ़वाल की मुख्य नगरी श्रीनगर से, बिहार तक बिरही में बाढ़ ने हाहाकार मचा दिया। लेकिन आश्चर्य की बात है। इस घटना के उपरान्त

गोहना झील के चारों तरफ ऊँची चट्टानों का पक्का किनारा अपने-आप बन गया। इस घटना को हुए अस्सी साल बीत गये हैं। गोहना झील का सुन्दर-शान्त स्वरूप मन मोह लेता है।

मैंने कहा था न ? गोमुखी तक जाने का सुगम मार्ग नहीं के बराबर है। गोमुखी ४,१४० मीटर ऊँचाई पर स्थित है। अन्य स्थलों के जैसे न आलय हैं, न मण्डा, न बस्तियाँ। प्रकृति के अपूर्व सौंदर्य के अलावा यहाँ कुछ भी नहीं। बायीं तरफ नीलंग पर्वत, चारों ओर तुषार, शुभ्र पहाड़ियाँ, असीम शांति। मनुष्य की स्वर्ग सम्बन्धी कल्पना जैसे यहीं साकार हो उठी है।

गोमुखी का अर्थ गाय का मुख ! गो का अर्थ 'पृथ्वी' भी ले सकते हैं। यहीं पर पहले-पहल भूमि से निकल आती हूँ न ? शायद इसीलिए 'गोमुखी' का नाम पड़ा होगा। छब्बीस किलोमीटर लम्बी हिमानी के नीचे अन्तर्धारा-सी प्रवाहित होकर मेरा स्रोत एक बरफीली गुफा के मुँह से चू पड़ता है। कहते हैं गुफा का मुख गाय के मुँह जैसा है, इसलिए 'गोमुखी' नाम पड़ा है। जो भी हो, यहाँ का नाम गोमुख है। इस गुफा का मुँह काफी चौड़ा है। गर्मी के दिनों में जब बरफ पिघलने लगती है, हिमाली के ऊपर से नीचे की तरफ असंख्य पतली तारों में झरता पानी मन मोह लेता है। शीशे के पतली तारों से जगमगाते पानी के धाराओं को जाड़े के दिनों में आप देख न पायेंगे। जाड़े में वे जम जाते हैं।

यहाँ पर पहुँचे लोग आश्चर्य करते हैं कि, छः मीटर भी जिसका विस्तार नहीं, वही गंगा आगे साठ मीटर चौड़ी कैसे बन जाती है। यहाँ मुझमें न गहराई है न विस्तार। पथरीला मार्ग है, इसके अलावा पानी इतना ठण्डा है कि स्नान नहीं करते बनता। यहाँ प्रवाह भी वेगवान है। लोग घबरा जाते हैं। लम्बी, दुर्गम यात्रा के बाद भी सहज भाव से मेरी धारा में गोता नहीं लगा पाते हैं बेचारे।

गोमुखी के चारों तरफ जंगल ही जंगल हैं। ये जड़ी-बूटियाँ और घास-फूस से समृद्ध हैं। कई जंगली नदियाँ मार्ग काटती हैं। इन्हें पार करना कठिन है। गोमुखी से गंगोत्री तक का मार्ग मेरे किनारे-किनारे चलता है। कहीं पर तेज चढ़ाई तो कहीं गहरे पर उतरना पड़ता है। सुखद हरियाली बिछी रहेगी चारों ओर। बिरही गंगा, देवगंगा आदि मुझसे मिलती हैं। चीढ़ीवासा में तपोवन-सी रम्यता है।

गंगोत्री की ऊँचाई ३,११७ मीटर है। मैं उत्तर-पश्चिम की तरफ बहती हूँ। हरी घास व देवदार के वृक्षों से ढँका मार्ग है। यहाँ पर मेरा पाट १४ मीटर चौड़ा है, पर गहराई केवल एक मीटर की है। लेकिन गति में तीव्रता होने से स्नान करना कठिन होता है। गंगोत्री से दस किलोमीटर की दूरी पर जाड़गंगा नामक 'जानवी' मुझसे मिलती है। इसका उद्‌गम स्थान माना दर्रा है। इसमें क्षिप्रता अधिक है। स्फटिक सा इसका पानी मुझमें घुल-मिल जाता है।

गंगोत्री की बस्ती मेरे दाहिने किनारे पर है। यहाँ पर धर्म-शालाएँ, पंडाएँ, साधुओं के आश्रम, एकाध घर भी हैं। दूकान, बाजार भी हैं। मेरा एक मन्दिर भी है। हर साल नवम्बर के महीने में यह मन्दिर बन्द होता है और मई महीने में फिर खुलता है। चट्टानों से बना यह मन्दिर काल के थपेड़े खाकर भग्न हो गया था। प्रकृति के इस दुर्गम स्थान पर स्थापित इस मन्दिर का पुनर्निमाण हुआ है। मैं जयपुर राजाओं की कुलदेवी हूँ। राजा भगीरथ यमुना, सरस्वती, शंकराचार्य की मूर्तियाँ यहाँ पर प्रतिष्ठित हैं। मन्दिर छोटा होने पर भी अपार कीर्ति वाला है।

मेरी मूर्ति स्वर्णिम है। मेरे आभरण, छतरी, वस्त्र···· पूजा के सामान सब कीमती हैं। मेरे मन्दिर के निकट भैरव का एक आलय है। जाड़े के दिन आते ही पुजारी एक बड़े घी का दीप जलाते और

उत्सव के साथ मूर्ति को लेकर नीचे उतर जाते हैं। मन्दिर बन्द हो जाता है। कड़ाके की सर्दी में यहाँ कोई नहीं ठहरता। तब तो पानी जम जाता है। हर तरफ बरफ ही बरफ दिखाई देती है। अक्षय तृतीया के दिन मन्दिर फिर से खुलता है। मन्दिर के भीतर अहर्निश जलते दीप को देखकर भक्त आश्चर्यचकित हो उठते हैं। यहाँ पर कई मुख्य तीर्थ हैं। गौरीकुण्ड, विष्णु कुण्ड, सूर्यकुण्ड आदि में यात्री नहाते हैं। सूर्यकुण्ड में पानी इतने वेग से गिरता है कि यात्री का सिर घूमने लगता है। गंगोत्री से डेढ़ किलोमीटर की दूरी पर गौरीकुण्ड है। इस कुण्ड में लिंगाकार इकट्ठी खड़ी चट्टान पर मेरे तीव्र प्रवाह को गिरते देखकर भक्त अपने को धन्य समझते हैं। कैलाशपति महेश्वर की जटाराशि से मानो उतर जाती हूँ—कि यात्री तक उत्साह से 'जय गंगा माई की' का नारा लगाते हैं।

यहाँ के पहाड़ों के पीछे ही केदार शिखर है। केदार गंगा यहीं से आती है। हम दोनों की जलधारा का रंग भिन्न है। मेरी नीली धारा में केदार गंगा का मिलन आनन्ददायक है। पुल पर खड़े होकर हमारे संगम को देखा जा सकता है। तीव्र वेग के कारण हम दोनों का पानी हुलस नृत्य करते, गरजते, बरजते परस्पर घुल-मिल जाता है।

गंगाजी का बड़ा धार्मिक महत्त्व है। यह भगीरथ की तपस्या का स्थान भी माना जाता है। तपस्या का अर्थ आँखें मूँदकर बैठ जाना नहीं। मेरी अबाध्य, अपार जलराशि को, तूफानी बाढ़ को, नर, नारायण की भलाई में, इस धरती को समृद्ध कराने में लगाने के लिए भगीरथ ने कितना चिंतन व मनन किया होगा, इसकी कल्पना की जा सकती है। भगीरथ के अथक प्रयत्न व अटूट लगन पवित्र तपस्या नहीं तो और क्या हैं।

गंगोत्री में मेरी उन्मत धारा को देखने वालों को भगीरथ की याद आये बिना न रहती साथ ही शंकराचार्य की पवित्र स्मृति भी जग

जाती है। यहाँ पर उन्होंने ही मेरे मन्दिर को प्रतिष्ठित किया था। सुदूर दक्षिण के 'कालडी' नामक छोटी सी बस्ती में जन्मे शंकर ने उत्तर में दूर-दूर तक, इस ऊँचे हिमालय की उत्तुंग चोटियों तक पैदल यात्रा करके अपने धर्म का प्रचार किया था। अद्वैत धर्म के प्रतिष्ठाता के पवित्र चरणों की धूलि यहाँ पर भी पड़ी है। मेरे लिए उन्होंने मन्दिर ही बनाया, पूजा-पाठ के लिए दक्षिण से पुजारियों व पंडितों को भी यहाँ लाकर बसा दिया। भारत की सांस्कृतिक एकता के लिए इससे बढ़कर कौन-सा उदाहरण दूँ मैं ?

चारों तरफ तुषारावृत्त हिम शृङ्ग ! मरकत के जड़ाऊ, आभरण से जगमगाती हरियाली व सघन देवदारु वृक्षावलियाँ। हवा में झूलती लताएँ, बिखरते फूल, गंगोत्री की प्राकृतिक छटा काव्यमयी है। दिल और दिमाग को असीम शान्ति देनेवाली है। वहाँ पहुँचते ही एक विचित्र अनुभूति मन को घेर लेती है। गोमुखी से अलकनन्दा मिलने तक मैं स्वेच्छा से पहाड़ों पर उछलती आती हूँ। कहीं-कहीं ऊँचाई से कूद पड़ूँगी, कहीं गढ़े से फिसलती जाऊँगी। कहीं-कहीं मेरा पथ सकरा है, कँकरीला है। कहीं-कहीं गहराई बहुत है। उद्दाम गति से आने के कारण मेरे बिखरते जलबिन्दुओं का धुआँ एक परदा-सा बनकर दृष्टि पथ पर छा जाता है। इसी बीच में कितनी ही हिमानियाँ मुझसे आ मिलती हैं। मेरे प्रचंड प्रवाह से गंगानी घाटी में मिट्टी का स्राव होता रहता है। ऊबड़-खाबड़ मार्ग के भारी चट्टानों और टीलों को भी मैं कभी-कभी बहा ले आती हूँ। कभी-कभी किनारे के पहाड़ ढह जाते हैं, किनारा टूट जाता है और मैं अपना मार्ग बदल देती हूँ। गंगानी में एक छोटी-सी बस्ती है। धर्मशाला, दुकानें आदि हैं।

मेरे बहाव का क्षेत्र हिमालय प्रदेश में अति मनोहर माना जाता है। प्राकृतिक सुषमा के अनिंद्य रूप की विभिन्न छटाएँ यहाँ पर मिलेंगी जो दर्शक को मोहाविष्ट कर लेती हैं। 'भागीरथी घाटी',

'भैरव घाटी' दोनों में एक स्वप्निल सौंदर्य व्याप्त है। कुबेर की महा-नगरी अलकापुरी है। लोगों का विश्वास है कि अलकनन्दा अलकापुरी की नदी है। असल में बद्रीनाथ से तेरह किलोमीटर की दूरी पर जो 'वसधारा' है, वहीं से अलकनन्दा प्रकट होती है। मेरी भाँति यह भी हिमानियों से उत्पन्न होती है। उसे अलकापुरी हिमानियाँ (ग्लेशियर्स) कहा करते हैं। भक्तों का विश्वास है कि वामनावतारी विष्णु भगवान के चरण कमलों से अलकनन्दा निःसृत होती है। दस किलोमीटर की दूरी पर इससे 'सरस्वती' मिलती है। माना जिले के निकट बद्रीनाथ के उत्तर में उनका मिलन होता है। इसके एक अंश को विष्णु गंगा कहते हैं। कई पहाड़ी नदियाँ इसे अपनी जलराशि की भेंट करती हैं। यहाँ पर जहाँ-जहाँ दो नदियाँ मिलती हैं, उस स्थान को 'प्रयाग' कहते हैं। नंद प्रयाग', 'कर्ण प्रयाग', 'विष्णु प्रयाग', 'रुद्र प्रयाग', 'देव प्रयाग' आदि मुख्य हैं।

धौली अलकनन्दा की मुख्य उपनदी है। 'निति दर्रा' से आती यह नदी विष्णु प्रयाग में विष्णु गंगा से मिलती है। कई हिम नदियों का पानी आ मिलने से इसमें अपार जलराशि लहराती है। जहाँ पर धौली और विष्णु गंगा का मिलन होता है, वहाँ जोशीमठ नामक पुण्य स्थली है। यहाँ पर शंकराचार्य ने अद्वैत मठ की स्थापना की है। यहाँ पर एक गुफा को शंकराचार्य गुफा कहते हैं। यहीं पर उन्होंने तपस्या की थी। प्रकृति के इस प्रशांत वातावरण में ही अपने एकांत वास में उन्होंने भाष्य लिखा था। सचमुच एकाग्र चिंतन व मनन के लिए यह जगह उपयुक्त है। १५३० मीटर की ऊँचाई पर स्थित जोशी मठ की पर्वतीय शोभा निराली है। यहाँ पर अलकनन्दा उद्दाम गति से भरती है। यहाँ यात्रियों के ठहरने की सब सुविधाएँ हैं। डाकखाना, बस के अड्डे, दूकानें, चायघर, पुलिस चौकी सब कुछ हैं।

धौली, अलकनन्दा के संगम पर स्नान करना परम पुनीत माना जाता है लेकिन नदी में गहराई और तीव्रता होने के कारण

स्नान का आनन्द लूटना कठिन है। घाट पर लोहे की साँकलें बँधी हैं। उन्हें पकड़कर लोग संगम पर गोता लगाते हैं। नदी पर एक काठ का पुल भी है। जहाँ पर सरस्वती और अलकनन्दा का संगम होता है, उसे 'केशवप्रयाग' कहते हैं। ऊपर-नीचे छलांग भरती आती सरस्वती को देखते वक्त लगता है जैसे कोई बालिका उल्लास से उछल-कूद मचा रही है। नदियों के वहने की आवाज दूर तक सुनायी देती है।

गढ़वाल के प्रयागों में नन्दप्रयाग मुख्य है। नन्दा नदी और अलकनन्दा चमोली के पास गले मिलती हैं। पिंडारी और अलकनन्दा का संगम कर्ण प्रयाग कहा जाता है। पिंडारी का उद्‌गम स्थान भी हिमानियाँ है। यह 'कानवट' नामक स्थान में गढ़वाल के अन्दर प्रवेश करता है। पिंडारी का प्रवाह दर्शनीय है। कविगण नीलमेघ श्यामल रंग की मादकता का वर्णन करते हैं न ? वैसी नीलाभ है इसकी धारा। शोर मचाती, चट्टानों को ढकेलती ऐसी चली जाती है कि दर्शक भयभीत हो उठते हैं। इसका रौद्र रूप, आक्रोशमय प्रवाह दिल दहला देने वाला है। यहाँ पर आबादियाँ व बस्तियाँ बहुत कम हैं। फिर भी हम नदियाँ और पर्वतीय प्रकृति, सघन वन और हरी-भरी घाटियाँ विभिन्न मोहक रूप धरकर अपने अद्वितीय रूप की झाँकी देती रहेंगी कि आप अभिभूत हो जाएँ।

मैं भी शात नहीं हूँ। मेरी धारा भी काफी वेगवती है। मेरा रौद्र रूप, आवेश, आक्रोश व तुमुल नाद आतंकित करता है तो आश्चर्य नहीं। अलकनन्दा से मिलने के उपरान्त मैं पश्चिम की तरफ चलती हूँ। अलकनन्दा से जहाँ पर मन्दाकिनी मिलती है, उसे रुद्र प्रयाग कहते हैं। यात्रीगण हर प्रयाग में गोता लगाना पुण्य मानते हैं। मन्दाकिनी केदारनाथ की पहाड़ियों से आती है। यह कर्ण प्रयाग से उन्तीस किलोमीटर पर है।

इन दोनों की संगम-स्थली निराली है। दोनों धाराएँ लहरें मारतीं, परस्पर टकरातीं, फेन उगलती साँपों सी गुँथी जाती हैं।

सीधी खड़ी ऊँची चट्टानों के बीच में बिलकुल सँकरी घाटी में मन्दाकिनी उमड़ आती है। अलकनन्दा से पूरे ज़ोर से आकर टकराती है मानो मत्तगज हों या काली बदलियाँ उमड़-घुमड़ कर गरजती हुई टकराती हों। अबाध गति से दोनों की तूफानी धाराएँ मिलने से धुआँ-सा छा जाता है। जलकण... मोतिकण-से झिलमिलाते-छितराते हैं। पत्थर और चट्टानों को तोड़-फोड़कर प्रवाहित होनेवाली मन्दाकिनी संगम के बाद एकदम शान्त और संयत हो जाती है। यहीं से केदारनाथ और बद्रीनाथ का मार्ग अलग होता है।

देव प्रयाग में अलकनन्दा से मेरा संगम होता है। यहाँ से ९१ किलोमीटर की दूरी पर हरिद्वार है। लक्ष्मण झूला व ऋषिकेश लगभग चौंसठ किलोमीटर पर हैं। लक्ष्मण झूला में मुझमें गहराई अधिक है। धारा भी तेज रफ्तार में है। लक्ष्मण झूला में लक्ष्मण का एक अति प्राचीन छोटा-सा मंदिर है। गंगोत्री व बद्रीनाथ की यात्रा करने को यहीं से होकर जाना होता है। पहले मुझे पार करना कठिन था। तैर करके पार करना दुस्साहसपूर्ण कृत्य है। रस्सी का एक झूलता हुआ पुल था। लेकिन वह भी कम जोखिम का न था। बाद में राजा सूरजमल सेठ नामक एक उदार व्यक्ति ने लोहे का झूलता हुआ पुल बनवा दिया जो आकर्षक एवं अनोखा है। मेरे बाएँ किनारे पर बस्ती है। प्रकृति माँ की गोद में पड़े अबोध शिशु-सा यह गाँव शांत है। यहाँ से ऋषिकेश पाँच किलोमीटर पर है। नीरव निस्तब्धता यहाँ छायी रहती है। तपोवन-सा रम्य वातावरण है यहाँ। यहाँ भरत का एक मन्दिर है। यहाँ के घाट बड़े सुविधाजनक हैं। यहाँ पर 'चन्दनुनराव' नदी मुझसे मिलती है और सोलह किलोमीटर के उपरांत 'शख', 'सुश्रुवा' नामक छोटी नदियाँ आकर एकाकार हो जाती हैं। यहाँ चारों तरफ व्याप्त सघन वनों, देवदार, पैर्दन, 'ओक' आदि वृक्ष बहुतायत में मिलेंगे। चीता, बाघ जैसे वन्य पशु, विविध पक्षीगण और हिरण यहाँ के जंगलों में पाये जाते हैं। मेरी धारा के बीचों-बीच कई टीले

हैं, जहाँ पर हरे-भरे बागों से भरी वनस्थली है। ऋषिकेश समुद्रतल से ३४२ मीटर की ऊँचाई पर है।

लक्ष्मण झूला से वारह, तेरह किलोमीटर की दूरी पर १,३५,१५० मीटर की ऊँचाई पर नीलकण्डम नामक स्थान है। निर्जन, एकांत व मन-मोहक प्राकृतिक वातावरण पर्यटकों को रोमांचित कर देता है। शीतल, ठंडी हवा थकान को दूर कर यात्री को पुलकित कर देती है। ओह ! कैसी अजीब शांति यहाँ पर विराजती है। उन्नत पहाड़ों से घिरा हुआ नीलकंठ जैसे शाखा, प्रशाखाओं को फैलाये खड़े विशाल वटवृक्ष में घोंसला बनाकर शांत बैठे पक्षी का स्मरण करा देता है।

ऋषिकेश का वातावरण भी शांतिपूर्ण है। लक्ष्मणझूला का पुल पार करते ही स्वर्गाश्रम यहाँ मिलता है। यहाँ पर मुनि, तपस्वी, साधु, संत कुटिया वनाकर एकांत साधना कर रहे हैं। कई धर्मशालाएँ व मठालय यहाँ पर हैं। यह भी वनस्थली है, हर कहीं फैली हरियाली मन को लुभाती है। घने वृक्ष, तरह-तरह के पेड़-पौधों के बीच में साधुओं की पर्णशालाएँ व कुटियाँ हैं। गीता भवन तथा अन्य कई प्रसिद्ध भवन पर्यटकों को यहाँ खींच लाते हैं। ऋषि-केश से नाव पर मुझे पार करना पड़ता है। मेरा प्रवाह मधुर गान करता, किनारों पर ताल देता और लहरियाँ उठ-उठकर मनोहर नर्त्तन करती रहती हैं।

हरिद्वार सप्त पुरियों में एक है। गोमुखी से २४० किलोमीटर की यात्रा में मैं कहीं भी शांत नजर न आती, न धीरे-धीरेबहती हूँ। मेरी जलधारा दोनों झूलों को छूती, लहराती है। हिमानियाँ पिघल कर अविरल धारा बहाती रहती हैं। मेरे बायें किनारे पर उन्नत पर्वत-मालाओं से घिरा हरिद्वार है। दाएँ किनारे पर चंडी पर्वत है। लक्ष्मण झूला तथा ऋषिकेश को पूरे वेग से पार करने के उपरान्त यहीं पर पहाड़ों की ममतामयी गोद से नीचे धरती पर उतर आती

हूँ। कई शाखाओं में विभक्त होकर बहती मैं यहीं पर पहले-पहल 'गंगा जी' का नाम पाती हूँ। मेरी प्रधान शाखा को नीलधारा कहते हैं। यह चंडी पहाड़ के निकट है। सप्त ऋषियों को तृप्त करने के लिए मैं सात धाराओं में बँटकर बहने लगी थी।

एक ओर नीलंग पर्वत, दूसरी तरफ बिलव पर्वत, चहुँ ओर स्थित श्यामल पहाड़ियाँ-बना देते हैं। ये सब हरिद्वार की चहुँ ओर की बनावट को सुरम्य बना देते हैं। शिवालक घाटी की उपत्यका में बसा यह पुण्य क्षेत्र आज बड़ी व्यस्त नगरी बन गया है। इसका दूसरा नाम गंगद्वार है। किन्तु स्थल का धार्मिक महत्त्व अधिक है। स्कन्ध पुराण, मत्स्यपुराण—जैसे प्राचीन ग्रंथ इसका यश गाते हैं। विभिन्न धर्म एवं जाति के लोग यहाँ पर आते हैं। बौद्ध, शाक्त, शैव, वैष्णव सब के लिए यह पवित्र क्षेत्र व तीर्थ-स्थली है।

यह पुण्य नगरी सहारनपुर जिले में है। मैं इस जिले की पूरबी सीमा को छूती हुई बहती हूँ। शिवालक पहाड़ी मालाओं के उतार पर यह नगरी बसी है। इसलिए प्रकृति अपने पूर्ण सौंदर्य के साथ यहाँ यात्री को मुग्ध कर देती है। मेरा जल स्फटिक-सा निर्मल है। मेरे तट पर खड़े होकर उत्तर दिशा की ओर दृष्टिपात करते ही प्रतीत होता है, मानो सुनील सागर पर श्वेत लहरें आलोड़ित हो रही हों।

नीलाभ वितान के नीचे मेरा प्रवाह फेन उगलता आता है। यहाँ के घाट बहुत सुन्दर हैं। कितनी ही देवी-देवताओं के मन्दिर हैं। दोनों तटों पर संगमरमर की सीढ़ियों वाले स्नान-घाट यात्रियों का मुक्त हृदय से स्वागत करते हैं। सप्तर्षि आश्रम, भीमगोडा, कनखल, ब्रह्मकुण्ड और हरि की पैड़ी मुख्य हैं। जनश्रुति है कि कुशावर्त तीर्थ, बिलवकेश्वरम्, नील पर्वत, कनकल आदि स्थान पर स्नान करने वाला इस जन्म के आवागमन से छूट जाता है। इसी विश्वास को सँजोये भारत के कोने-कोने से आये शीतल जलधाराओं में स्नान किया करते हैं।

ब्रह्मकुण्ड में मेरा एक मन्दिर है—बिलकुल छोटा किन्तु अपार आकर्षण वाला। संध्या काल में हरि की पैड़ी में होने वाली आरती लोगों को भावविभोर कर देती है। ब्रह्मकुण्ड पर एक सुन्दर पुल है। संध्या को पुल पर, दोनों तटों पर भीड़ रहेगी। पुजारियों का मंत्रोच्चारण सारे वायुमंडल को मुखरित करता है। सैकड़ों छोटे-छोटे दीप मेरी चंचल धारा में तैरने लगते हैं। यह दीपदान है। पुरोहित घी का दीप लिये आरती उतारते हैं। शंखों, घंटियों व नगाड़ों की आवाज से वातावरण गूँज उठता है। मेरे वक्ष पर ही एक माला सी शोभित दीपमालाओं को देखते हुए लोग, शीतल मंद हवा का परस पा स्वयं को भूल जाते हैं। कितने ऋषियों, योगियों व तपस्वियों से यह भूमि पवित्र हुई है। यहाँ के हर घाट व स्थल के सम्बन्ध मेंअनन्त पौराणिक कथाएँ प्रचलित हैं। सामने नीलंग पर्वत की चोटी पर चंडी का मन्दिर है। यहाँ तक पहुँचने का मार्ग कठिन है—फिर भी दर्शनार्थियों की भीड़ लगी रहती है।

उत्सव के दिनों में हरिद्वार की सुन्दरता द्विगुणित हो जाती है। धारा पार करने के लिए नावों के पुल बन जाते हैं। आजकल हरिद्वार सुख-वास स्थल बनता जा रहा है। कई, पुल, बाग, बगीचों व इमारतों का निर्माण हुआ है। मेरा कल-कल गान, रात के अन्धकार में नक्षत्रों से झिलमिलाते दीप, यात्रीगण द्वारा अर्पित फूलों के ढेर, वेदपाठ की ध्वनि स्वर्गिक वातावरण की सृष्टि करती है।

सूर्य हमारे देवता हैं। जीवन प्रदायिनी हैं उनकी किरणें। वैशाख मेलों के रूप में यहाँ सूर्य देव की पूजा मनायी जाती है। सारे उत्तर भारत में वैशाखी मेला मुख्य उत्सवों में से एक है। जाड़े और ठंड के बाद सूर्य की रश्मियाँ गंदगी और कीटाणुओं को जलाकर भस्म करने लगती हैं न? इसे पर्व के रूप में मनाकर लोग आनन्दित होते हैं। मेरे सारे तटवर्ती प्रदेशों में जगह-जगह पर मेले आयोजित होते हैं। हरिद्वार में यह विशेष रूप से चलता है।

कुम्भ मेला बारह सालों में एक बार आता है। नासिक, उज्जयिनी, प्रयाग और हरिद्वार में कुम्भ मेला विशेष रूप से मनाया जाता है। सागर मंथन के समय देवासुरों में अमृत कलश पर अधिकार के प्रश्न को लेकर संघर्ष छिड़ गया। समय पाकर गरुड़ अमृत कलश को उठा ले गया। कलश को उसने चार स्थानों पर रखा था। वही हरिद्वार, उज्जयिनी, नासिक और प्रयाग हैं। यहाँ पर अमृत की बूँदें छितरा गयीं थीं, इसलिए ये पावन पुण्य स्थलियाँ मानी जाती हैं।

गुरु और सूर्य मकर राशि में रहे और रविवार के दिन पूर्णिमा आये तो प्रयाग और हरिद्वार में कुम्भ मेला पड़ता है। गुरु और सूर्य सिंह राशि पर रहें और गुरुवार के दिन पूर्णिमा आये तो गोदावरी में कुम्भ मेला होता है। गुरु और सूर्य मेघ राशि पर रहते समय सोमवार के दिन कृष्ण पक्ष की अष्टमी आये तो कावेरी के तट पर तथा आषाढ़ महीने में गुरु आये और सोमवार को अमावस्या पड़े तो कृष्णा के तट पर कुम्भ योग मनाया जाता है। मेले के समय यहाँ का कोलाहल और भीड़-भाड़ वर्णनातीत है।

ब्रह्म कुण्ड में अधिक गहराई नहीं। यहीं पर ब्रह्मा जी ने तप किया था। इसीलिए आज भी ताप-तप्त लोग मेरी शीतल धारा में तन-मन का ताप उतारने आते हैं। वैरागी और साधु धूनी रमाये बैठे नजर आते हैं। और कितना कहूँ ! यह मिट्टी पवित्र है। ऋषिकुल, कांगड़ी विद्यालय के अतिरिक्त सरकारी कारखाने भी यहाँ हैं। ज्वालापुर संस्कृत विद्यालय बड़ा महत्त्वपूर्ण है। हरिद्वार के आगे मेरे रूप में बड़ा परिवर्तन आ जाता है। मार्ग भी ऊपर, नीचा व समतल है। जंगली घास-फूस से मेरे तटवर्ती प्रदेश भरे रहते हैं। चरागाहों की कमी न होने से पशुपालन यहाँ के लोगों का प्रधान धन्धा है।

●

4

मेरे तट पर अनेक महान नगरियाँ थीं जिनकी कीर्ति दूर-दूर तक व्याप्त थी। हस्तिनापुर ऐसी ही महान नगरियों में एक थी। आज मैं उससे बहुत दूर हट गयी हूँ, मगर उस सम्पर्क की स्मृतियाँ अभी भी ताजी हैं।

आर्यों का इस क्षेत्र में आगमन हुआ और उन्होंने आर्यावर्त का निर्माण किया। वेदकालीन आर्यों ने 'जनपद' राज्यों को रूप दिया। कुरु और पांचाल ने आर्य संस्कृति के विकास में पूरा योग दिया। सप्तसिंधु प्रदेश से आनेवालों के लिए हस्तिनापुर प्रथम प्रवेश द्वार की भाँति था। यह नगरी चंद्रवंशी और इक्ष्वाकु वंशों की राजधानी भी रही। कुरु वंश के शासनकाल को मैंने देखा है। 'कुरु वंश' शब्द का उच्चारण करते ही महाराजा शांतनु की गंभीर आकृति अब मेरे आँखों के सामने तैर जाती है। शांतनु ! उन्हें मैं कभी भूल सकूँगी ? मर्त्यलोक के इस महाराजा के साथ मेरा प्रणय कितना स्पृहणीय था ? वे दिन कितने प्यारे थे ? हजारों वर्ष गुजर गये, फिर भी उन दिनों की याद आते ही मेरा रोम-रोम पुलकित हो उठता है। प्रेम पवित्र है, अमर है। इसमें मुझे संदेह नहीं। हमारे प्रणय को दुनिया भूल जाये···मगर वह हमारे पुत्र भीष्म को भूल न सकेगा। अनन्त काल तक पितामह भीष्म के रूप में उसे स्मरण किया जाएगा।

नीले आकाश पर झिलमिलाते तारागण-सी अतीत की स्मृतियाँ मेरे मानस पटल पर चमक उठती हैं।······भीष्म जैसे पुत्र की माँ बनने का भाग्य मुझे मिला था न ? उसका त्याग कितना महान था ? मैंने जहाँ कुरु वंश में धर्मराज के नीतिपूर्ण शासन को देखा, वहीं कुरु

क्षेत्र के भयंकर युद्ध व कौरव कुल के महानाश की साक्षी भी मुझे वनना पड़ा।

इन सबके बाद महाराजा परीक्षित हस्तिनापुर की गद्दी पर बैठा। वीर अभिमन्यु का कुल दीपक था यह। न्यायी व शीलवान और आदर्श शासक। उसके शासन में प्रजा बड़ी सुखी थी। फिर भी ऐसे योग्य शासक के कुछ विरोधी थे। उन्होंने किसी न किसी तरह उसे मार डालने का निश्चय कर लिया था। बहुत प्रयत्न करने पर भी अंत में वह उनके छल का शिकार बन गया। नागों के सरदार तक्षक ने परीक्षित की हत्या कर दी।

परीक्षित के उपरांत जनमेजय गद्दी पर आसीन हुआ। वह महा-पराक्रमी व शक्तिसम्पन्न वीर पुरुष था। उसने अपने पिता की मृत्यु का वदला लेने का निश्चय किया और उसे पूरा भी किया। नागों पर आक्रमण कर उसने उन्हें हराया ही नहीं, उनके राज्य को तहस-नहस करके मिट्टी में मिला दिया।

इसके बाद महाराजा नसिकेतु के राज्य काल में ही मेरी प्रलयं-कारी वाढ़ ने इस पर नगरी को आप्लावित कर दिया।

नागों ने फिर से इस नगरी को स्थापित करने की कोशिश की और एक सीमा तक वे सफल भी हुए, लेकिन उनका शासन यहाँ अधिक समय तक न रह पाया। नागा जाति का रहन-सहन, आचार-विचार आर्यों से बिल्कुल भिन्न थे। 'वेद-विरोधी' कहकर जनता उनसे घृणा करती थी। जनता के बीच में न इनका आदर था, न स्नेह। कुरु वंश के लोग मेरे किनारे से हट गये और एक पृथक 'वत्स राज्य' का निर्माण किया। 'कौशाम्बी' उनकी राजधानी रही। उन दिनों कितने ही 'जनपद' राज्य करते थे। वहाँ जनता शासक होती थी। गणतन्त्रवाद इस देश के लिए कोई नई बात नहीं है। बुद्ध के पूर्व और पश्चात् के 'काल को 'महाजनपद युग' भी कहते हैं न ?

तब यह राज्य भी, समृद्धि, कला, संस्कृति आदि समस्त वैभवों से पूर्ण था।

एक बार गौतम बुद्ध भी इस नगरी में पधारे थे। जैनियों के लिए भी हस्तिनापुर पुण्य क्षेत्र है। उनका विश्वास है कि हस्तिनापुर नगरी देवताओं द्वारा निर्मित पुनीत नगरी है। कई जैन तीर्थंकरों का जन्म इस मिट्टी में हुआ है। सम्राट अशोक के पौत्र 'सम्प्रति' ने तीसरी बार इस प्राचीन नगरी का निर्माण किया। उन्होंने समुद्र पार के देशों में भी बौद्ध धर्म की ध्वजा फहरायी। उनका पौत्र जैन धर्मावलम्वी था। इस नगरी के उत्थान व पतन दोनों का मैं मूक दर्शक ही बनी रही।

उत्तर प्रदेश का इतिहास ही आर्यावर्त्त का इतिहास है।

हजारों, हजारों बरस पहले उत्तर भारत का रूप आज जैसा नहीं था। यह सारा प्रदेश बरफ से ढँका था। प्राकृतिक भौमिक प्रक्रियाओं व आन्तरिक हलचलों के कारण धरती में कई परिवर्तन होते रहे। हिमालय का उदय हुआ व हम नदियाँ उन पर्वतों को काट-काटकर जो रेत मिट्टी बहा ले जाती थीं, उससे एक नवोदित मैदानी प्रदेश का विकास हुआ। यह मैदान एक सरसब्ज उर्वरा मैदानी भूभाग था, जहाँ प्रकृति लहलहा उठी थी। आर्य पहले-पहल यहीं पर आबाद हुए थे।

उत्तरी ध्रुव व उसके आस-पास के प्रदेशों में दस महीने धूप खिली होती थी पर शेष दो माह ठण्ड से ठिठुर जाया करते थे। उसके दक्षिण की तरफ के भू-प्रदेश में सात मास धूप के और पाँच सर्दी के होते थे। सूर्य और चन्द्र वर्ष में एक ही बार उदित व अस्त होते थे। एक साल अर्थात् एक दिन।

एकाएक प्रकृति की प्रक्रिया में महान क्रान्ति हुई। जलवायु इतनी बदल गयी कि बरफ की वर्षा होने लग गयी। सारा प्रदेश बरफ से

ढँक गया। लोगों का रहना कठिन हो गया। लोग भीषण सर्दी के शिकार हुए। जब वहाँ जीवित रहना और जीवन बिताना असाध्य हो गया तो मानव समुदाय बिखर गया। यहाँ से वे मध्य एशिया, पामीर, अफगानिस्तान, ईरान और यहाँ आने लगे। इन्हीं लोगों का एक दल इस देश में आया। वे ही आर्य कहलाये हैं। बाहर से आये ये लोग पहले-पहल सप्तसिन्धु प्रदेश में आ बसे और उसी को अपना देश कहने लगे। पर इस दश मे बसने के लिए उन्हें काफी संघर्ष करना पड़ा। जिस दिशा में वे आगे बढ़, वहाँ क आदिवासियों से उन्हें लड़ना पड़ा। अन्त में आर्यों न उन्ह पराजित कर इस प्रदेश पर अपन अधिकार जमा लिया। क्रमशः हिमालय और विन्ध्य पहाड़ों के बीच के भूभाग पर इनका अधिकार हो गया और वही आयावर्त कहा जाने लगा। आर्य राजाओं न इस भूभाग को कई हिस्सों मं बांट लिया। मनु और उसके चार पुत्र इसके इतिहास क प्रारम्भ-कर्ता हैं।

सिन्धु नदी के पश्चिमी तीर पर इक्ष्वाकु ने अपने राज्य की स्थापना की। सुध्युम्न ने सरस्वती नदी के किनारे तक के भूभाग पर राज्य किया। सरस्वती के दूसरे तट को अपनी सीमा बनाकर 'शर्यात्' ने अपने राज्य का संगठन किया। पूर्वी दिशा की तरफ 'प्राश्' का राज्य था। पुरुरवा, नहुश, ययादि आदि राजा इसी परम्परा में हुए। ययादि का राज्यकाल उन्नत दशा में था। यमुना तट तक उसके राज्य का विस्तार हुआ था। ययादि के वंशज यादव कहे गये। कृष्ण इसी कुल में अवतरित हुए।

मनु की पुत्री एला ने सोम के पुत्र 'पुत' से विवाह किया था। इनके वंशज चन्द्रवंशी कहलाये। सप्तसिन्धु प्रदेश में इक्ष्वाकु और ब्राह्मण के वंशजों ने तीन-चार सौ सालों तक राज्य किया। इसके उपरांत अन्धकार का घना परदा घिरता गया। लेकिन समय की

आवश्यकता के अनुसार निर्विड़ अन्धकार में अनेक उज्ज्वल तारे अचानक चमक उठते हैं। ब्राह्मण वंश में 'अविशित्', यदुकुल में 'शश-बिन्दु', इक्ष्वाकु में महा पराक्रमी 'मान्धाता' आदि महापुरुषों का उदय हुआ। मान्धाता के उपरान्त पुरुरवा की कीर्ति, सारे सप्तसिन्धु प्रदेश में उद्भासित रही। महाराजा दुष्यन्त इसी कुल के यशस्वी पुरुष थे। वेदकालीन युग में उनके पराक्रम और सुशासन की सर्वत्र ख्याति थी। इसी के सुपुत्र भरत की कीर्ति का यह 'भरत खण्ड' साक्षी है। इसी के नाम पर देश का नाम 'भारतवर्ष', 'भरत खण्ड' नाम पड़ा है।

आर्यों की विजय पताका···मेरे उपजाऊ मैदान में फहराती रही। आर्यों की सभ्यता, संस्कृति, कला और धर्म ने अपनी अप्रतिम ज्योति-किरणों से सारे क्षेत्र को आलोकित कर रखा था। मेरे, यमुना तथा सरस्वती के तीर पर यज्ञादि करने का श्रेय भरत को मिला। कौरव, पाण्डव इसी कुल के थे, इसलिए उनके आपसी युद्ध को भारत-युद्ध और उनकी कथा को 'महाभारत कथा' कहा जाता है। भरत के उपरांत आया 'दिर्दस्यु'। सारे सप्तसिन्धु प्रदेश में इसकी विजय-दुंदुभि प्रतिध्वनित हो रही थी। यह महा बलिष्ठ और अद्वितीय वीर था। भरतवंशी, सुहोत्र के पुत्र सप्तसिन्धु प्रदेश से आगे बढ़ना चाहते थे। उन्होंने यमुना को पार किया और अपने राज्य का विस्तार किया। आर्यों के इतिहास का यही पहला अध्याय है।

इस समय इक्ष्वाकु वंश में राजा दिलीप शासन कर रहा था। आर्य अपने अभियान और राज्य विस्तार में अपने साथ कुल गुरुओं, ऋषि-मुनियों को साथ लेते गये। नये-नये राज्य स्थापित होने पर भी, उनकी शिक्षा, कला, ज्ञान, धर्म व संस्कृति का केन्द्र सप्तसिन्धु प्रदेश ही रहा। यही नहीं, अपनी संस्कृति और संस्कारों को वे कभी न भूलते। नदी, पहाड़, व स्थानों को, अपने वंशजों का नाम या

सप्तसिन्धु से सम्बन्धित कोई नाम देकर अपनी सभ्यता का प्रसार करते रहे।

ईसा के लगभग २५०० वर्ष पूर्व की बात है। सुहोह के एक पुत्र 'जहनु' ने मेरे तीर पर एक साम्राज्य का निर्माण किया। 'कश' नामक दूसरे पुत्र ने काशी राज्य की स्थापना की। वाराणसी उसकी राजधानी थी। सप्तसिन्धु प्रदेश में तो यादवों का हाथ ऊँचा था। उन्होंने काशी पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में कर लिया। लेकिन दिवोदास और उसके पुत्र ने पुनः काशी को अपने अधिकार में ले लिया। दिवोदास का पुत्र 'प्रतर्दन' महाबली और प्रतिभाशाली था। उसने पश्चिमी हिस्सों पर चढ़ाई कर उन्हें जीत लिया और अपने इस साम्राज्य को 'वत्स' नाम दिया।

ऋग्वेदकाल में कई महान सम्राट हुए। इस युग को स्वर्णयुग कहना उपयुक्त होगा। वेदों में तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक व धार्मिक जीवन का विवरण है। आर्य और अनार्यों के संघर्ष, हार-जीत वर्णनों में वह भरा पड़ा है। आर्य राजा शांत कहाँ रहे ? आये दिन लड़ाइयाँ होती रहीं, तलवारें टकराती रहीं। इक्ष्वाकु कुल के महाराजा सगर की कीर्ति तथा उसके उज्ज्वल प्रदीपों से चमकते वंशजों के प्रतापपूर्ण कृत्यों के इक्ष्वाकु कुल के इतिहास को आर्यों के नवोत्थान व उन्नति का इतिहास वना दिया। महाराजा दिलीप व महाराजा भगीरथ दोनों अप्रतिम ज्योतिपुंज थे। भगीरथ के पहले ही ऋग्वेद का अधिकांश भाग रचा गया था। यजुर और अथर्व वेद की रचना उसी के समय प्रारम्भ हुई थी। आर्य प्रकृति की गोंद में पले और बड़े हुए। मेरे और यमुना के बीच के मैदानी प्रदेश के सौन्दर्य ने उसकी बनावट, उर्वरा शक्ति ने उन्हें मोह लिया। अतः मेरे तट पर वे महान साम्राज्यों का निर्माण करने को उत्सुक हों तो आश्चर्य क्यों ? इक्ष्वाकु वंश की एक उपशाखा में उदित राजा विनि-मादव ने अपने पुरोहित गौतम की सहायता पर, जंगलों को मिटाकर

आबाद किया। वही राज्य 'विदेह' कहा गया। राजा जनक विदेह के महाराजा थे। इक्ष्वाकु वंश की दूसरी शाखा में उदित वीरों ने ही वैशाली और अंग देश की स्थापना की।

इतिहास की ये सारी बातें मैं आपको क्यों सुनाती हूँ ? जानते हैं ?

सभ्यता, ज्ञान व कला में यूनान, मिस्र व मेसोपोटामिया ने अद्वितीय उन्नति की थी। ईरानी संस्कृति व सभ्यता जो चरम सीमा तक जा पहुँची थी, उनका आज नामोंनिशान तक नहीं। मगर इस प्राचीन भारत की संस्कृति एवं सभ्यता सदा से अक्षुण्ण रही। काल बड़ा वेगवान है, परिवर्तनशील है। उसका तीव्र बहाव मेरी आसुरी बाढ़-सा अन्धाधुन्ध बहता सबको बहा ले जाता है। नया युग, नया साम्राज्य, नये-नये विचारों का आविर्भाव होता रहता है। हमारे देश में भी कई नदी, लहरें आयीं, मगर यहाँ की संस्कृति व संस्कारों के महासागर में एकाकार हो गयीं। शक, हूण, ईरानी, पठान, मुगल, कितने ही जातियों के भयंकर आक्रमण इस देश पर होते रहे। समय-समय पर विधर्मों का प्रसार हुआ, आघातें हुए। भारत का शरीर इन करारी चोटों से क्षत-विक्षत हो गया, मगर उसकी आत्मा मलिन न हुई।

आज यूनानी, सिथियन, रोमन व मिस्त्रियों का अलग अस्तित्व नहीं। मगर मेरे भारत के निवासी भारतीय ही कहलाते हैं। बाहर से आयी संस्कृतियाँ, सभ्यता, धर्म, सिद्धान्त और संप्रदाय जो भी हमारी परम्परा व संस्कृति के विरुद्ध थे, इस देश में स्थान पा सके। फिर भी ईश्वर, धर्म, प्रथा, आत्मा सम्बन्धी जो विचार व विश्वास रहा, वह बिल्कुल अप्रभावित रहा। जीवन के मूल सिद्धांतों व बुनियादी विश्वासों में कोई परिवर्तन न आया।

भारतीय सामाजिक जीवन की जड़ें मजबूत हैं। इसकी नींव व

गठन अविचलित रहीं। सप्तसिंधु के जमाने से ही पेशे के आधार पर सामाजिक वर्गीकरण शुरू हुआ। जाति-प्रथा का जन्म आधुनिक है। इस कथन पर शायद आश्चर्य हो। प्रारम्भ से ही आर्य इस बात के लिए सतर्क रहे कि राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक अधिकार एक ही बिंदु पर केन्द्रित न हो जाएँ। अधिकार, धन, सम्पत्ति व व्यापार पर किसी वर्ग का एकाधिकार न होने देने के लिए वे सावधान रहे। इसलिए जन्म का आधार न लेकर कर्म अर्थात् पेशे के आधार पर लोगों का विभाजन हुआ। एक समाज के भीतर लोग इस तरह संगठित किये गये। वेदकालीन ग्रन्थों का अध्ययन इस तथ्य की पुष्टि करेगा।

तब वैवाहिक सम्बन्धों में कोई कट्टरता नहीं थी। परस्पर अन्तर-जातीय विवाह हुआ करते थे। क्षत्रिय राजा ययादि ने मुनि कुमारी देवयानी से प्रेम विवाह कर लिया। राजकुमारी सुकन्या च्यवन मुनि की पत्नी बनी। विश्वामित्र की बहन सत्यवती ने ऋषिका मुनि व नहुष की पुत्री ने ऋषि पुत्र अम्नवान का वरण किया था। विदर्भ की राजकुमारी मुनि अगस्त्य की पत्नी बनी थी।

आर्यों ने सब दृष्टि से अपने जीवन व समाज को व्यस्थित रूप से संगठित कर लिया था। समाज में नारी का आदरणीय स्थान था। घर व परिवार में उसे ऊँचा स्थान मिला था। 'मनुस्मृति' के अनुसार, यत्र नार्यस्तु पूज्यते, तत्र रमन्ते देवता। जीवन के हर क्षेत्र व विधा में नारी का समान अधिकार था। पारिवारिक व कौटुम्बिक जीवन भी इतना सुव्यवस्थित रहा कि हर गृह देवालय के समान पवित्र रहा। कुटुम्व का बुजुर्ग पितृतुल्य था। सब उसका कहना मानते थे। बाल-विवाह का प्रचलन न था। हर एक को अपनी इच्छा पर जीवन साथी को चुनने का अधिकार था। इस स्वर्णयुग में विद्याओं एवं कलाओं की भी खूव उन्नति हुई।

आर्य प्रकृतिपूजक थे। नदियाँ उनके लिए आराध्य देवी थीं। अग्नि, इन्द्र, वरुण, सोम, सूर्य, उषा उनके प्रधान देवता थे। वे पर्वत, सागर के भी पूजक थे। वेद, प्रकृति के प्रति उनकी श्रद्धा की अभिव्यक्ति है। ६००० वर्षों पहले ही मानव की बुद्धि का यह विकास आश्चर्यजनक ही है। मानव ने केवल वाह्य प्रकृति की आराधना ही नहीं की, सारी सृष्टि में, अणु-अणु में व्याप्त उस परम सत्ता को अजेय मानकर उसके समक्ष अपने को नगण्य व अकिंचन समझा। नदियों को देवता मानकर पूजने से न रुका, मगर उसके तटों व तीरों पर अपनी राजधानियाँ व नगर बसाये। मेरे तीर पर भी उन्होंने राज्यों का निर्माण किया। व्यापार और वाणिज्य के लिए नदियों का जलमार्ग सुगम रहा। जब वे सप्तसिंधु से आये तो मैंने उन्हें अपने स्नेहमयी आँचल में स्थान दिया।

अज्ञान के अंधकार मंडित इस युग में आर्य आलोक स्तम्भ के समान चारों तरफ ज्ञान की ज्योति बिखेरते रहे। साहित्य, कला, संगीत, ज्योतिष इस तरह ज्ञान के हर क्षेत्र में उनकी उन्नति देखकर मेरा हृदय गर्व से पूरित हो उठता था। गुरुकुलों में विद्याभ्यास कराया जाता था, जहाँ पर उच्च, नीच, धनी, गरीब के भेदभाव के बिना शिक्षा दी जाती थी। विद्यार्थियों पर कड़ा अनुशासन रखा जाता था और संयम, नियम, आचरण व सच्चरित्रता की शिक्षाएँ दी जाती थीं।

अयोध्या नगरी के पश्चिम में मालिनी नदी के किनारे पर था कण्व महर्षि का आश्रम। नर्मदा के तट पर च्यवन मुनि का गुरुकुल, प्रयाग में भरद्वाज का आश्रम, अमरावती के निकट, अपस्तम्भ, खंभात खाड़ी के पास अगस्त्य, मिथिला में याज्ञवल्क्य के, सिंधु तीर पर केलऋषि के, सुंदरवन में कपिल थे। तुंगभद्रा में मदंग मुनि थे, भागलपुर में शृंग ऋषि के, सरयू के तट पर मार्कण्डेय मुनि के, बिठूर

में वाल्मीकि के, नेमिशारण्य में चौणक मुनि के और उज्जयिनी में शांति मुनि आदि के गुरुकुल बहुत प्रसिद्ध थे।

वेदकाल में चक्रवर्तियों का शासन था। चक्रवर्ती, ईश्वर तुल्य माना गया। मगर वे स्वेच्छाचारी न थे। वनराजसिंह को भी पतले रेशों से बुने जाल में बाँधकर जैसे उसे शक्तिहीन बनाकर मनमानी करने से रोक दिया जाता है, उसी तरह जनता के बुनियादी अधिकार और प्रजामत स्वेच्छाचारी राजा को नियंत्रित कर देते थे। इसके प्रमाण थे वेदकालीन साम्राज्य। अथर्ववेद में कहा गया है, 'हे! राजन! हमने आपको राजपद पर आसीन किया है। पधारिये! इस आसन पर विराजमान होकर दृढ़ता से शासन कीजिए। चंचल न बनिए। प्रजा आप से स्नेह करे। यह राज्य व राजपद आपसे कलंकित न हो।'

ऋग्वेद आर्यों का अति प्राचीनतम ग्रन्थ है। इसमें १,०२८ सूत्र हैं। १०,००० से ज्यादा मंत्र हैं। दस मंडलों पर इसका विभाजन हुआ है। इसकी रचना एक ही समय पर न हुई। समय-समय पर अनेक ऋषियों के सहयोग से ऋचाओं की रचना होती रही। आर्य संस्कृति के समस्त मूल तत्त्व इसमें अंतर्निहित हैं। सामवेद में कुछ अंशों को छोड़कर बाकी सब ऋग्वेद की कथाएँ ही हैं। सामवेद को भारतीय संगीत का आदि ग्रन्थ कह सकते हैं। इसमें गेय मंत्रों की प्रधानता है। सोम यज्ञ के लिए मंत्र और गीत गेय रूप में रचित हैं। यजुर्व वेद गद्य में है। इसके दो भाग हैं। एक में मंत्र और दूसरे में गद्य रूप में भाष्य है। वेद यज्ञादि से सम्बन्धित हैं। यज्ञ की विधियाँ, अनुष्ठान व नियमों का विधान इसमें मिलेगा। अथर्व वेद में शत्रु, व दुर्दैव, रोगादि से अपने को रक्षित करने की विधियों का विधान है। मोहन, मारण, वशीकरण आदि विद्याओं का भी वर्णन है। सभ्यता व संस्कृति पर भी मननीय विचार हैं।

वेदकालीन समाज की उन्नति का धीरे-धीरे ह्रास होने लगा। उनके सामाजिक जीवन में कई परिवर्तन आ गये। मैं तो उनके उत्थान व उन्नति पर आनन्दित होती थी, अब उनके पराभव को देखकर शोकाश्रु बहाने लगी। आलोक स्तम्भ की ज्योति अंधकार में अन्तर्धान हो गया।

जनता-नव आलोक की प्रतीक्षा में, नव प्रभात की आशा में पलकों के पाँवड़े बिछाए बैठी रही···एक दिन पौ फटी···महावीर और बुद्ध का अवतरण हुआ। जैन और बौद्ध धर्म प्रस्फुटित हुए और उनकी सुगंध दूर-दूर तक महक उठी। महावीर का नाम था वर्द्ध-मान। उनके द्वारा प्रवर्तित धर्म निग्रन्थ धर्म कहा गया। तीस वर्ष की उम्र में महावीर ने संन्यास ले लिया और १३ साल तक कठिन तपस्या की। वे जैन धर्म के २४ वें तीर्थंकर थे। तप, उपवास और वैराग्य पर जोर देते थे। जैन साधु जनता में अहिंसा का प्रचार करते थे। भारत के लिए अहिंसा नई बात नहीं। वेदों में हो इसका उल्लेख है।

बुद्ध महावीर के समकालीन थे। कपिलवस्तु का राजकुमार सिद्धार्थ सांसारिक सुखों को त्याग कर कठिन तपश्चर्य के द्वारा बुद्ध देव बना। उसने जनता को कर्मकाण्डों के बन्धन से मुक्त कर प्रेम और अहिंसा का उपदेश देना अपना धर्म समझा। बुद्ध दया और मैत्री के मूर्तिमान रूप थे। उनका धर्म प्रेम और स्नेह का धर्म था। अंध-विश्वास और कर्मकाण्डों के विरुद्ध संघर्षरत बुद्ध बुद्धिवादी थे। उनके जीवन से सम्बन्धित कई स्थल मेरे ही तट पर हैं। उत्तर प्रदेश और बिहार उनकी चरण धूलि से पवित्र हुए। उन्होंने बुद्ध गया में तपस्या कर ज्ञान प्राप्त किया और मृगदान में पहले-पहल उपदेश दिया। लगभग ४५ वर्ष तक घुमक्कड़ी बन लोगों में अपने धर्म व विचारों का प्रचार करते रहे। महानिर्वाण के पूर्व उन्होंने अपने शिष्य आनन्द से कहा,

"हे आनन्द ! तुम अपने लिए स्वयं दीपक होओ। बाह्य साधनों का आश्रय न लेना। धर्म की शरण में जाओ और सत्य का दीप धारण करके बढ़ते चलो।"

ये शब्द आज भी मेरे कानों में गूँज रहे हैं। बुद्ध के ये वचन-युग युगान्तर तक भारतीय जनता को सत्य नामक दीप को धारण कर आगे बढ़ने की शक्ति प्रदान करते रहेंगे उसमें मुझे जरा भी संदेह नहीं। बुद्ध ने पद यात्रा की। गाँव-गाँव, नगर-नगर में अपना संदेश दिया। जो कुछ मिला, वही भोज्य रहा। मेरे तटों के बाग-बगीचों में उन्होंने रात बितायी, विश्राम किया। दिन ध्यान व अध्ययन में बीतता। संध्या प्रवचन में काम आती। बुद्ध को धार्मिक विश्वास पर श्रद्धा न थी। मेरे निर्मल जल में गोता लगाने मात्र से एक व्यक्ति के सारे पाप धुल जाएँगे। वह पापमुक्त हो जायगा, इस पर उन्हें विश्वास न था। वे पूजा-पाठ, यज्ञादि को भी न मानते थे।

मैं अक्सर सोचा करती हूँ। पाप कृत्य कर, जीवन भर पापात्मा बना रहने वाला क्या मेरे पानी में डुबकी लगाने मात्र से पावन बन सकता है ? पानी से शरीर का मैल धोना काफी नहीं, मन की मलिनता को भी धो लेना जरूरी है। हाँ, बौद्ध धर्म के द्वारा बुद्ध ने जाति-भेद को मिटाया। उनकी दृष्टि में समस्त मानव समान थे। उनकी करुणा पूरित समदृष्टि ने लोगों को आकर्षित किया। वे मानवतावादी थे। बुद्ध के पहले स्त्रियों को धर्म में कोई स्थान न रहा, मगर बौद्ध धर्म में भिक्षुणियों को आदरपूर्ण स्थान मिला। सारे देश में बौद्ध विहार, मठ व मठालय बने। उन्हें तत्कालीन राजाओं का आश्रय भी मिला।

सिर के ऊपर, गगन मण्डल पर उद्‌भासित सूर्य को क्षितिज पर उतरना ही पड़ता है न ? बौद्ध धर्म की भी यही गति हुई। बौद्ध विहार और मठालय मानव के मनोविकार और कमजोरियों के शिकार

हो गये। योग का स्थान भोग ने ले लिया। ओह ! इसकी कितनी शाखाएँ हो गयीं ? हीनयान, महायान, तंत्रयान, मंत्रयान......बुद्ध ने जिन सिद्धांतों व विचारों का उपदेश दिया था, जिस श्रेष्ठ तत्वों के महान प्रवर्तक व प्रणेता बने रहे, उनके बिल्कुल विपरीत। परस्पर विरोधी विचार और सिद्धान्त अब बौद्ध के अंग बन गये। मौर्य और गुप्तों के राज्य काल के उपरान्त जनता अहिंसा में अपना विश्वास खोने लगी। मेरे तट पर बड़ी दूर तक कई छोटे बड़े राज्य जैसे लिच्छवि, मगध, वज्जी, अंग, कोराल, अवंति, वत्स, वैशाली आदि अपनी कीर्ति-किरणें बिखेरते थे।

मेरठ जिले में प्रवेश कर, आज के उत्तर प्रदेश में पाँव रखते ही मैंने आर्यावर्त का परिचय.....और तत्कालीन इतिहास की एक झाँकी प्रस्तुत की है। अब गणतंत्र भारत के एक राज्य उत्तर प्रदेश का परिचय देती हूँ—

उत्तर प्रदेश का क्षेत्रफल २८४,३६५ वर्ग किलोमीटर है। आजादी के बाद राज्यों का जो पुनर्गठन हुआ। उसमें इसका बड़ा महत्व है। जैसा मैंने पहले कहा है, प्राचीन काल से यह भारतीय सभ्यता व संस्कृति का क्रीड़ा-स्थल रहा। इसकी जनसंख्या ७,३७,५२,९२४ है। इसमें कुल ४९ जिले हैं। टिहरी, गढ़वाल, देहरादून, नैनीताल आदि उत्तरी पहाड़ी प्रदेशों का विस्तार लगभग ४५००० वर्ग किलो-मीटर है। भारत व तराई प्रदेश में सहारनपुर, शिवालिक पहाड़ियों की तलहटी में है। बिजनौर, रामपुर, बरेली, पीलीभीत, खेरी, बहराइच, गोंडा, बस्ती, गोरखपुर, अल्मोड़ा आदि लगभग ६०,००० वर्ग किलोमीटर तक फैले हैं। उत्तर प्रदेश का अधिकांश भाग मेरा ही मैदानी प्रदेश है। इसका विस्तार लगभग १,५९,००० वर्ग किलोमीटर है। मुजफ्फरनगर, मेरठ, बुलन्दशहर, अलीगढ़, मथुरा, आगरा, एटा, इटावा, फरुखाबाद, मैनपुरी, बदाऊँ, मुरादाबाद, शाहजहाँपुर, इलाहाबाद, आजमगढ़, बलिया, बनारस, बाराबंकी,

फैजाबाद, फतेहपुर, जौनपुर, गाजीपुर, हरदोई, उन्नाव, सीतापुर, लखनऊ, कानपुर, प्रतापगढ़ आदि हैं। बुन्देलखण्ड के पठारी भाग, हमीरपुर, जालौन, बाँदा, झाँसी आदि का विस्तार लगभग २५,००० वर्ग किलोमीटर है। मिर्जापुर इस राज्य का सबसे बड़ा जिला है।

इस राज्य की जलवायु भी इसकी भू-रचना के अनुसार समान न होकर विभिन्न है। केवल मध्यवर्ती मैदानी भाग की जलवायु सम है। गर्मी के दिनों में लू चलती है और जाड़ों में ठण्ड। शीत लहरें लोगों को ठिठुरा देती हैं। उत्तरी पहाड़ी प्रदेश गर्मी के दिनों में सुखकर होता है। तराई प्रदेश में वर्षा अधिक होती है। हिमाच्छादित पर्वत शिखर दर्शनीय हैं। इस राज्य के उत्तर में तिब्बत, उत्तर-पूरब में नेपाल, पूरब, दक्षिण-पूरब में बिहार, दक्षिण में मध्य प्रदेश, पश्चिम में राजस्थान, मध्य प्रदेश, दिल्ली व पूर्वी पंजाब आदि सीमाएँ बनी हैं। मेरे अर्थात् गंगा के अतिरिक्त यमुना, गोमती, घाघरा आदि समतल मैदान की मुख्य नदियाँ हैं। मेरा मैदानी प्रदेश हरिद्वार से शुरू होता है। डेल्टा प्रदेश होने से यहाँ की मिट्टी उपजाऊ है। पठारी भाग में बेतवा, केन, टोंस आदि नदियाँ बहती हैं। फिर भी यहाँ पर कृषि अधिक नहीं होती।

इस राज्य में ३३,००० वर्गकिलोमीटर के क्षेत्र में वन फैले पड़े हैं। उत्तरी पहाड़ी भाग व तराई क्षेत्र व मेरे दक्षिणी-पूर्वी किनारे सघन वन छाये रहते हैं। उद्योग-धन्धों की उन्नति-सम्पन्नता की दृष्टि से ये उल्लेखनीय हैं। यह तो कृषि प्रधान राज्य है। खाद्यान्न खूब पैदा होते हैं।

प्राचीन काल से यहाँ पर सिंचाई के साधन होते रहे हैं। आजकल सिंचाई की सुविधाओं की खूब वृद्धि हुई है। निचली गंगा नहर, पूरबी यमुना नहर, आगरा नहर, शारदा नहर—जैसे कितनी ही नहरें बनी हैं। कई बाँध बने हैं। जल-विद्युत का उत्पादन भी महत्त्वपूर्ण है। उद्योग-धन्धों की भी खूब उन्नति होती रहती है। यहाँ की भाषा

हिन्दी है। इसके उत्तर में तिब्बत, उत्तर-पूरब में नेपाल, पूरब, दक्षिण-पूरब में विहार, दक्षिण में मध्यप्रदेश, पश्चिम में राजस्थान, मध्य प्रदेश, दिल्ली व पूर्वी पंजाब इसकी सीमाएँ हैं। अधिकतर इसका भूभाग मैदानी है। उत्तर में हिमालय की तीन श्रेणियाँ हैं। गढ़वाल, टेहरी, अलमोड़ा, नैनीताल, देहरादून जिले इसके अन्तर्गत हैं। मैं और मेरी बहन यमुना यहाँ की मुख्य नदियाँ हैं। हरिद्वार से मेरा मैदानी भाग शुरू होता है। डेल्टा प्रदेश होने से यहाँ की मिट्टी वड़ी उपजाऊ है। उत्तरी पहाड़ी प्रदेश पथरीला है जहाँ पर अन्तर्हिमालय व बहिर्हिमालय की श्रेणियाँ हैं। यहीं पर बरफ से ढँकी चोटियों पर वद्रीनाथ, केदारनाथ जैसे पुण्यधाम हैं। मंसूरी, नैनी, रानी खेत जैसे पहाड़ी सुखवास-स्थल, देहरादून की सुन्दर घाटियाँ हैं। शिवालिक श्रेणियों और मेरे मैदान के बीच की तराई में घने वन और घासों से भरी जमीनें हैं। यहाँ अनेक जंगली पशु पाये जाते हैं। मेरे समतल मैदान सोना उगलने वाली भूमि हैं। मेरी, यमुना, गोमती, व घाघरा की जलधारा से सिंचित इस प्रदेश में कृषि मुख्य उद्योग है। दक्षिण पठारी भाग पहाड़ी प्रदेश है। इस पठारी उच्च भूमि में बेतवा, केन, टोंस जैसी नदियाँ हैं। फिर भी यहाँ पर कृषि अधिक नहीं होती।

उत्तर प्रदेश की जलवायु भी इसकी भू-रचना के अनुसार विभिन्न तरह की होती है। उत्तरी पहाड़ी प्रदेशों में जाड़ों में अधिक ठण्ड रहती है और गर्मी बड़ी सुखकर होती है। मध्य भाग के मैदान की जलवायु सम है। गर्मियों में लू चलती है और जाड़ों में सर्द हवा। तराई प्रदेश में वर्षा अधिक होती है। पर्वतीय भागों में हिमवर्षा होती है।

इस प्रदेश में ३३,००० वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में वन फैले हुए हैं। उत्तरी पहाड़ी भाग, तराई के क्षेत्र, मेरे दक्षिणी-पूर्वी किनारे पर

सघन वन छाये रहते हैं। ये वन बड़े उपयोगी हैं। पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत वनों की सुरक्षा, वन विस्तार, उपयोगी वृक्षों को लगाना आदि कार्य होते रहते हैं। गन्ना खूब पैदा होता है। उत्तरी जिलों में कपास, गोरखपुर जिले में सन, गढ़वाल पहाड़ों पर चाय, काफी के बागान, फलोत्पादन आदि खूब होता है।

5

पर्वत से उत्तरकर भारत की मिट्टी पर पाँव रखते ही मेरा रोम-रोम पुलकित हो उठता है। हरिद्वार तक पहाड़ों में बहती हुई मैं एक लम्बी, कठिन यात्रा तय करती हूँ। यह यात्रा हरिद्वार के आगे भी जारी रहती है। आगे का मार्ग भी ऊबड़-खाबड़ है। घने वनों से आच्छादित घाटियों के बीच से गुजरती हुई मैं आगे बढ़ती हूँ। जनता की सुख-समृद्धि के लिए मेरे जल की छोटी-छोटी धाराएँ काट ली जाती हैं; फलतः मुझमें पहले जैसा उन्माद व तीव्रता नहीं होती। शामपुर के तीन किलोमीटर पार मुझमें पैलिराव आ मिलती है। यह नदी गढ़वाल के पहाड़ों से आती है इसलिये वर्षा के दिनों में बड़ी वेगवती बन जाती है। छः किलोमीटर बाद मेरा खासन नदी से मिलन होता

है। इस नदी में वर्ष भर पानी रहने से सिंचाई का काम खूब चलता है। आसफगढ़ के पास कोटवालीराव नदी से संगम होता है।

मेरी उप-नदियों में मालिनी मुख्य है। मालिनी का नाम सुनते ही कालिदास का 'शाकुन्तलम्' याद आ जाता है। दुष्यन्त-शकुन्तला का प्रणय इसी नदी के तट पर फला-फूला था। मुनि कण्व का आश्रम यहीं की मादक शीतल छाया में बसा था। रावलि के पास मालिनी मुझसे मिलती है। कहीं-कहीं दलदली व भाँवर प्रदेश हैं। जंगली घासें मनमाने ढंग से फलती-फूलती हैं। झाड़-झंखाड़ों की कोई कमी नहीं। तराई के दलदल प्रदेश इतने भयंकर हैं कि कभी-कभी उनमें हाथी भी धँस जाते हैं। मानव की तो बिसात ही क्या!

मुजफ्फरपुर की ओर बढ़ते समय मेरे मन में कई स्मृतियाँ जग जाती हैं। आज मैं अपने पुराने मार्ग से बहुत दूर हट गयी हूँ। न जाने मुझे क्या हो जाता है, एकाएक दिशा बदल देती हूँ।

लो···मेरठ आ गया है। 'हस्तिनापुर नगरी गंगा के किनारे पर थी, लेकिन गंगा उसे बहा ले गयी है।' लोगों का यह कथन मेरे कानों में गूँजता रहता है।

मेरठ जिले में आज हस्तिनापुर नामक एक छोटा-सा गाँव है। यह मेरठ से पैंतीस किलोमीटर की दूरी पर मेरी उपनदी 'बूढ़ी गंगा' के तट पर स्थित है। आर्यों का पंजाब में आगमन हुआ तो वे यहीं पर आबाद हुए। महाभारत काल में यह नगरी अत्यन्त उन्नत अवस्था में थी। यह पाण्डवों की राजधानी थी। बूढ़ी गंगा गढ़मुक्तेश्वर के पास मुझसे मिलती है। इसका पानी भी सिंचाई के लिए अधिक काम नहीं आता है। भाँवर और दलदली प्रदेश यहाँ पर अधिक हैं। इसलिए जंगली घास और बाँसों के झुरमुट अधिक उगते हैं। इन जंगली घास, बेंत व बाँसों से कुटीर उद्योगों का विकास होता है। कुर्सियाँ, मोढ़े, चटाइयाँ आदि बनाये जाते हैं। जंगली जानवर, वन्य जन्तु, जंगली सुअर आदि तो इन जंगलों में स्वेच्छा से विचरण करते हैं।

उनका महत्व भी कम नहीं है। कहीं-कहीं ईख और अन्य अनाज भी उगाये जाते हैं। गढ़मुक्तेश्वर बूढ़ी गंगा के ऊँचे कगार पर स्थित है। यहाँ पर मेरे देवालय हैं। कातिक पूर्णिमा के दिन यात्रियों की भीड़ लगती है। मेले का कोलाहल एक उन्माद की सृष्टि करता है। लोगों के आनन्द का नशा मुझ पर भी चढ़ जाता है।

मेरठ मुख्य शहर है। एक समय यह फौजी केन्द्र था। यह मेरे तट से ४० किलोमीटर की दूरी पर है। नवाबों के जमाने में तथा कम्पनी के शासन-काल में यहाँ पर बमों के गोदाम, शस्त्रशालाएं व फौजी अड्डे हुआ करते थे। उन प्राचीन गरिमा के चिह्नों को आज भी देखा जा सकता है। अद्भुत शिल्पकारी से युक्त कई मन्दिर, देवालय और गिरजाघर बरबस ध्यान आकर्षित कर लेते हैं।

मेरठ से बुलंदशहर, अनूपनगर आदि को पार करती हुई मैं बिजनौर से मुरादाबाद जिले के पश्चिमी सीमा पर प्रवेश करती हूँ। यहाँ भी मैं अक्सर अपना मार्ग बदल लेती हूँ, जिससे तटवर्ती प्रदेश के निवासियों को बेहद कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। लोगों की तकलीफों से मैं परेशान हूँ। मगर क्या करूँ? मेरा कोई वश नहीं। नयी बाढ़ के आते ही मेरा सारा नियन्त्रण टूट जाता है। कांगटोर के पास मुझ पर रेलवे पुल बना है। इस पुल की सुरक्षा के लिए मेरे दोनों तट पक्के कर दिये गये हैं ताकि बाढ़ में बह न जायें। फिर भी वर्षा काल में मेरा रूप बदल जाता है। एकदम उद्दाम रूप ले लेती हूँ। कितने नद, नाले मुझे अपना पानी दे देते हैं। उनके द्वारा लायी गयी मिट्टी बड़ी उपजाऊ होती है। मेरे तटीय और मैदानी प्रदेश के ऊर्वरापन का यही मुख्य कारण है। मुरादाबाद के उपरांत मैं बदायूँ जिले में प्रवेश करती हूँ। यहाँ लगभग १४८ किलोमीटर बहती हूँ। मेरे बायें किनारे पर रामघाट, अहूर, अनूपनगर, नरोरा आदि उल्लेखनीय नगर हैं। अहूर प्राचीनतम नगरी है। उन दिनों मेरी धारा प्रसिद्ध जलमार्ग थी, तब अहूर वाणिज्य केन्द्रों में प्रमुख था

और तटीय व्यापार खूब चलता था। आज भी यहाँ पर नावें याता-यात का साधन बनी हैं। कई एक सुन्दर मन्दिर भी हैं। मेलों व उत्सवों के दिनों में यहाँ पर इतना कोलाहल मच जाता है कि उनके आनन्द में मैं भी आनन्दित हो जाया करती हूँ।

'नरोरा' में मुझसे निचली गंगा नहर निकाली गयी है। यह बुलन्दनगर जिले में है। इस निकाली गयी नहर की नहर कुल लम्बाई ४८०० किलोमीटर है। इसकी दो प्रधान शाखाएँ हैं। कानपुर शाखा तो कानपुर में मुझसे निकलती है। कानपुर–इटावा शाखा तो मेरी ऊपरी गंगा नहर को पार कर फतेहपुर जिले में यमुना से मिलती है। इसकी नयी-नयी शाखाएँ आवश्यकता के अनुसार निकलती रहती हैं। नरोरा में अब एक अणु शक्ति केन्द्र भी स्थापित किया जा रहा है।

बदायूँ में मेरा एक तरफ का किनारा ऊँचा है और दूसरी तरफ नीचा व ढलवाँ है। 'नरोरा' में बाँध वना लेने के उपरान्त मेरी बाढ़ एक तरफ से नियंत्रित है। 'महुआ नदी' मुरादाबाद से निकलती है और मुझमें मिलती है। इसमें अधिक पानी नहीं होता। बाढ़ का अमित पानी मुझमें मिल जाता है। मेरे तटों पर की हरियाली नयना-भिराम होती है। लहलहाते खेतों की हरीतिमा पर आह्लादित होती हुई, एटा ज़िले कि उत्तरी सीमा के रूप में लगभग ५१ किलोमीटर में बहती हूँ। पहले मैं अपना पुराना तट छोड़कर काफी दूर हट गयी थी, लेकिन आजकल पानी की अपनी पुरानी धारा पर आ गयी हूँ। गेहूँ, गन्ने और अनाज की फसलें यहाँ खूब होती हैं। शाहजहाँपुर की सीमा बनी मैं २६ किलोमीटर प्रवाहित होती हूँ। फिर भी अधिक काम न आती हूँ। फर्रुखाबाद की उत्तरी सीमा को छूती हुई बहती मैं दक्षिण की तरफ मुड़कर, अलीगढ़ तालुके को जिले के मुख्य भाग से अलग कर देती हूँ। सिंगीरामपुर के पास फिर से इसकी सीमा के निकट

आती मेरी धारा फर्रुखाबाद, हरदोई जिलों को विभाजित कर देती है। अपने पुरानी धारा के मार्ग पर विचार करूँ तो इतिहास प्रसिद्ध राजधानी कन्नौज आँखों के सामने आ जाती है। कन्नौज को त्यागे कितने ही साल हो गये। अब फिर से उसकी तरफ निकट आने लगी हूँ।

यहाँ पर रामगंगा मेरी प्रधान उपनदी है। यह कुमाऊँ से निकली है और इसकी लम्बाई ५९२ किलोमीटर है। बिजनौर जिले में काल-गढ़ किले के पास यह मैदान में उतर आती है। यहाँ पर इसका पाट काफी चौड़ा है। यहाँ से २४ किलोमीटर की दूरी पर इसके दायें किनारे पर 'कोह' नदी आ मिलती है। दोनों ही पहाड़ी नदियाँ हैं। वे एकाएक उफन पड़ती हैं। सर्वनाश का हाहाकार मचा देती हैं। शिवालिक घाटी के कारण रामगंगा दक्षिण-पश्चिम का मार्ग लेती हुई बहती है, लेकिन मैदान में उतरते ही दक्षिण-पूरब की तरफ मुड़ जाती है। मुरादाबाद, रामपुर, बरेली, बदायूँ, शाहजहाँपुर, फर्रुखाबाद, हरदोई जिलों में बहकर कन्नौज से थोड़ी दूर पर मुझसे मिल जाती है। मुझे आवेशमयी, आक्रोशमयी कहते हैं। मगर रामगंगा मुझसे भी बड़ी उद्दण्ड है। इसका कोई ठिकाना नहीं। जब चाहे, जैसा चाहे भयंकर रूप धारण कर लेगी। तट पर के खेतों पर मिट्टी पूर देती और गाँवों को डुबा देती है। आजकल इसे नियंत्रित करने की कोशिशें हो रही हैं। कन्नौज से थोड़ी दूर पर 'काली नदी' मुझसे मिलती है। इसकी लम्बाई ४९६ किलोमीटर है।

कन्नौज का एक स्वर्ण युग था। तब पूरे वैभव के साथ वह विजय का झण्डा फहराते खड़ा था। हर्ष के शासनकाल में कई एक विदेशी यात्रियों का यहाँ पर आगमन हुआ था।

पर तीसरी शताब्दी अंधकार का युग बन गया। चौथी शताब्दी के प्रारंभ में इस गहन अंधकार को भेदकर प्रकाश की किरणें फैलने लगीं। गुप्तों के साम्राज्य का उदय हुआ और महान योद्धा समुद्रगुप्त

द्वारा संस्थापित गुप्त साम्राज्य की कीर्ति दूर-दूर तक फैलने लगी। सभ्यता, संस्कृति, सुव्यवस्थित शासन, शिक्षा-दीक्षा व कला में महत्व-पूर्ण उन्नति तक जो पहुँचा था, धीरे-धीरे मलिन होता गया और स्कन्दगुप्त के उपरांत बिखर गया। हर्ष से पहले देश की स्थिति बड़ी शोचनीय थी। राजा आपस में संघर्ष करते रहे। अशांतिपूर्ण इस युग में थानेश्वर में एक नयी शक्ति का आविर्भाव हुआ। वर्द्धन वंश का प्रभाकर वर्द्धन थानेश्वर का पराक्रमी और प्रभावशाली शासक था। इसे राज्यश्री नामक पुत्री और राज्यवर्द्धन और हर्षवर्द्धन नामक दो बेटे थे। प्रभाकरवर्द्धन की रानी का नाम था यशोमति। बड़ा ही स्नेहशील परिवार था वह। राजकुमारों के योग्य अस्त्र-शस्त्र विद्याओं में दोनों राजकुमार दक्ष थे। भाई-बहन एक दूसरे पर जान देते थे। राज्यश्री बड़ी सुन्दर और गुणवती थी। उसका विवाह कन्नौज के राजा गृहवर्मा से हुआ। वह मौखरी वंश की रानी बनी। जब उसका नगर प्रवेश हुआ मैं ऐसी गुणवती व रूपसी को पाकर आनन्दित हुई। गृहवर्मा और राज्यश्री का दाम्पत्य जीवन कितना सुखी था। इस विवाह सम्बन्ध से थानेश्वर का गुप्त वंश और मौखरी वंश जो पहले वैरी थे, अब स्नेह बंधन में बँध गये।

कुछ लोग ऐसे भी हैं, जिनसे दूसरों की सुख-शांति देखी नहीं जाती। गृहवर्मा के भाग्य पर मालव और गौड़ राजा जल रहे थे। इधर एकाएक प्रभाकर वर्धन बीमार पड़े। उस वक्त दोनों राजकुमार बड़ी सेना लेकर, उत्तर-पश्चिमी सीमा पर हूणों से युद्ध कर रहे थे। पिता की बीमारी की खबर पाकर हर्ष भागता आया। इसी बीच में खबर मिली कि कन्नौज का गृहवर्मा मारा गया है। हर्ष दुःख के सागर में डूब गया।

मौका पाकर मालव नरेश देवगुप्त कन्नौज पर चढ़ आया। गृहवर्मा की हत्या कराकर राज्यश्री को कैद कर दिया। यह समाचार

पाते ही राज्यवर्धन खौल उठा और भारी सेना सहित आक्रमण कर उसने मालव नरेश को हरा दिया। वह बड़ा वीर योद्धा था। गौड़ राजा धूर्त शशांक के कपट से अनजान रह गया। उसके झूठे सम्मान व मैत्री के भुलावे में आ गया था कि शशांक ने उसे धोखे से मार डाला।

ये सारी बातें जानते ही हर्ष ने उत्तेजित होकर प्रतिज्ञा की कि वह अवश्य ही इसका बदला लेगा। पिता और भाई अब न रहे। प्रिय बहन जो वंदिनी बनी थी, अब जंगलों में भाग गयी थी। वह अकेली और दुखी थी। सोलह वर्ष का वह वीर शक्तिशाली सेना सहित रण अभियान को निकल पड़ा।

वह अपनी प्रिय बहन को ढूँढ़ता हुआ विंध्य के जंगलों और पहाड़ों में फिरा। बड़ी दौड़-धूप के उपरान्त उसने राज्यश्री को, जो चिता में कूदकर प्राण-त्याग करने वाली ही थी, बचा लिया। दुखिया राज्यश्री ने हर्ष की स्नेह छाया में नवजीवन पाया था। बहन व भाई का यह प्रेम आखिर तक बना रहा।

इसके उपरान्त हर्ष का सबसे पहला कार्य शशांक से बदला लेना रहा। शशांक……हूँ…उसके बारे में क्या कहूँ ? यह मिट्टी महात्मा बुद्ध की चरण धूलि से पावन बनी थी। जहाँ पर अहिंसा व प्रेम तथा सर्वधर्म समन्वयता का सन्देश सर्वत्र गूँजता रहा, उसी मिट्टी पर शशांक का जन्म हुआ। वह बौद्ध धर्म का विरोधी रहा। वोधि-वृक्ष को कटवाया और उस धर्म का नाश करने में पूरा जोर लगाया। हाँ, बौद्ध का मूलोच्छेद करने में जिसने उत्साह दिया…उसी भारत में एक सम्राट ऐसा भी रहा जिसने समुद्र पार के देशों तक बौद्ध धर्म को फैलाया और बुद्ध के सन्देशों का प्रचार करना अपने जीवन का ध्येय समझा। वह महान सम्राट आज भी अमर है। उसकी याद के साथ शशांक की भी याद आए तो आश्चर्य कैसे ? बौद्ध विहार व मठालयों को शशांक ने नष्ट किया। बौद्धों को तरह-तरह की यातनाएँ थीं।

हर्ष, शीलादित्य के नाम पर गद्दी पर बैठा। उसने लगातार छह वर्ष युद्ध कर अपने राज्य की सीमाओं का विस्तार किया। आसपास के राजाओं ने इसके आधिपत्य को स्वीकार कर लिया, केवल पुलिकेशी द्वितीय को वह न जीत पाया। हर्ष ने अपनी बहन राज्यश्री की इच्छा के अनुसार कन्नौज़ को अपनी राजधानी बना लिया था। हर्ष द्वारा संस्थापित साम्राज्य के शासन की बागडोर सँभालने के लिए थानेश्वर से कन्नौज अधिक सुविधाजनक थी। इसी तरह मेरे तट पर कन्नौज को राजधानी बनाने का सुयोग मिला।

हर्ष महान योद्धा, साहसी व धीर पुरुष था। उसका शासन प्रबंध सर्वोच्च था। उसका दंड विधान भी कठोर था। वह साहित्य-प्रेमी व कला रसिक था। यही नहीं, वह स्वयं एक भावुक कवि था। उसकी कविताएँ इसकी साक्षी हैं। 'नागानंद', 'रत्नावली', प्रियदर्शिका' आदि हर्ष के प्रसिद्ध संस्कृत नाटक हैं। इसके दरबार में कविगण, साहित्य-प्रेमी और पंडितों को आश्रय मिला था। कवि बाण का नाम सर्वविदित है। वे हर्ष के प्रिय कवि थे। उन्होंने ही 'हर्षचरित' लिखा है। हर्ष में विलक्षण प्रतिभा थी। उसके जीवन का बहुत-सा अंश रणक्षेत्र में बीत गया। वह साहित्यिक ही नहीं, रणकुशल योद्धा व राजनीतिज्ञ भी था।

चीनी यानी युवान स्वांग को मैंने देखा। बुद्ध के जन्म-स्थान के दर्शन के लिए वह बेहद उत्सुक था। जहाँ पर बुद्ध ने तपस्या की, अपने धर्म का प्रचार किया व निर्वाण प्राप्त किया, उन पुण्य स्थलियों का दर्शन करने के लिए अगणित कष्टों की परवाह न कर उसने कष्टकर पद-यात्रा की थी। हर्ष भी उससे मिलने को उत्सुक था। युवान के आगमन की सूचना पाते ही अपनी बहन के साथ उसने रातों-रात मेरी धारा पार की। युवान राजकीय अतिथि के रूप में बहुत दिन रहा। इन दोनों में अपूर्व मैत्री व स्नेह था। यूवान ने

अपने यात्रा-वर्णन में हर्ष की जीवनी तथा उसके साम्राज्य का विस्तार से चित्रण किया है।

उस दिन कन्नौज में जो धार्मिक सभा हुई, वह एक अप्रतिम चित्र-सी मेरे मानस पटल पर बार-बार अंकित हो जाती है। कन्नौज में विशाल सभा का आयोजन हुआ था। हर्ष का आगमन कितना भव्य था। जनता की भारी भीड़ उसका अनुकरण कर रही थी। असम का राजकुमार मेरी धारा के दायें किनारे पर अपने परिवार के साथ आ ठहरा था। बायें किनारे पर शीलादित्य की शोभायात्रा आ रही थी। मंगल वाद्य बजाते, श्रृंग, भेरी जैसे नाना प्रकार के वाद्यों की ध्वनियों के साथ दो राजा अपने दल-बल सहित आए। लम्बी यात्रा के बाद वे लोग कन्नौज पहुँचे और मेरे पश्चिमी किनारे पर विशाल बगीचों में ठहराये गये। सभा में सम्मिलित होने के लिए हर्ष ने अनेक लोगों को निमंत्रित किया था। फलतः उसमें राजा, महाराजा, श्रमण, पंडित, ब्राह्मण, विविध धर्मों के प्रतिनिधि आये थे।

अतिथियों के लिए शिविरों तथा परिषद् के लिए विशाल संघ्राम निर्मित हुआ था। इसमें एक साथ दो हजार आदमी बैठ सकते थे। सभा के मध्य में बुद्ध की मूर्ति प्रतिष्ठित करने के लिए एक सिंहासन बना था। सभा-भवन के निकट तीस मीटर के लगभग ऊँचा एक भव्य मन्दिर भी खड़ा किया गया था जिसमें तथागत की मूर्ति प्रतिष्ठित थी। इस वैभव-प्रदर्शन के लिए हर्ष ने बड़े व्यापक रूप से विशिष्ट प्रबन्ध किया था। श्रमण और ब्राह्मणों के भोजन की उत्तम व्यवस्था हुई थी। अतिथियों की हर आवश्यकता पर ध्यान दिया गया था। संघ्राम से सभा-भवन तक का मार्ग तोरणों से सजाया गया था। उत्सव का कोलाहल आकाश तक पहुँच रहा था।

वसंत ऋतु थी। चारों ओर फूलों की बहार थी। मलय पवन सुगंध की लपटों को हर कहीं फैला रहा था। भ्रमरों का गुंजन,

कोयल की कूक, पक्षीगण का कलरव गान और उत्सव का उल्लास सारे वातावरण को मधुमय बना रहा था। सुसज्जित हाथी पर विराज हर्ष अपनी गोद में बुद्ध की एक मीटर ऊँची स्वर्णिम मूर्ति लिये शानदार जुलूस में सभास्थल में पहुँचा। कुमार राजा छत्रधारी बन। जुलूस में पाँच सौ हाथी थे। जुलूस के आगे और पीछे सौ-सौ हाथियों में मंगल वाद्य बजाते हुए वादक बैठे थे।

महाराजा हर्ष दोनों तरफ एकत्रित लोगों की ओर मोती और रत्नों को उलीचते गये। सोने व चाँदी से बने फूलों की वर्षा-सी हुई। भगवान बुद्ध की मूर्ति सिंहासन पर प्रतिष्ठित हुई। मेरे जल से अभि-सिक्त मूर्ति को हर्ष अपने कन्धों पर लेकर आलय में गये। रत्नखचित दिव्यवस्त्र से मूर्ति का अलंकरण हुआ। पूजन व चढ़ावों के उपरान्त सभा हुई। विभिन्न देशों से आए प्रतिनिधि अपने-अपने स्थान पर आसीन हुए। यूवान इस धर्म परिषद में भाग लेकर अपने सिद्धांतों को व्यक्त करने ही आया था। उस वक्त बौद्ध धर्म में भारी परिवर्तन आ गया था। महायान, हीनयान, मंत्रयान, तंत्रयान इस तरह कई संप्रदायों में बौद्ध धर्मावलम्बी बँट गये थे। धर्म-सभा में उपस्थित श्रमण, ज्ञानी, भिक्षु व चिंतकों में परस्पर वाद-विवाद हुआ। पक्ष-विपक्ष के तर्क चित्ताकर्षक रहे। धर्म-सभा के उपरान्त हर्ष यूवान के साथ प्रयाग आया। वह बड़ा दानी था। हर पाँच वर्ष में एक बार वह मेरे तट पर अपना सर्वस्व दान दे दिया करता था। वह भी बड़ा रोचक उत्सव रहा करता था। उसके बारे में मैं फिर कहूँगी।

निस्संतान हर्ष का व्यक्तित्व प्रतिभाशाली था। तत्कालीन परि-स्थिति में वह आलोक स्तम्भ जैसा था। समस्त राजनीतिक शक्तियों को एकछत्र के नीचे लाने में वह समर्थ रहा। मगर उसके बाद केन्द्रीय शक्ति बिखर गयी। मगर यशोवर्मन के शासन काल में कन्नौज फिर से गौरवान्वित हुआ। विगत वैभव पुनः अपने-आप यश फैलाने लगा।

यशोवर्मन ने बिहार और बंगाल पर नियंत्रण किया और काश्मीर नरेश ललितादित्य के साथ मिलकर उसने तिब्बती राजा को हराया। कन्नौज को कान्यकुब्ज भी कहा जाता है। यशोवर्मन साहित्य प्रेमी व कला रसिक था। वाक्यपतिराज और भवभूति जैसे महान् कविगण उसकी सभा की शोभा बढ़ाते थे। यशोवर्मन के उपरान्त गुर्जर प्रतिहार वंश ने कन्नौज पर शासन किया। इस वंश में राजा भोज का नाम अमर है। वह बड़ा प्रतापी व प्रतिभाशाली राजा था। उसने अपने राज्य को साम्राज्य का रूप दिया, जो हर्ष के साम्राज्य से कम महत्व का नहीं था। भोज प्रजापालक, नीतिमान, रणकुशल था। उसने लगभग पचास वर्षों तक राज्य किया। राजा भोज मेरी स्मृति में सदैव जीवित रहेगा।

समय परिवर्तनशील है। अंधकार और प्रकाश बारी-बारी से आते हैं। तीनों तरफ समुद्रों से घिरी हुई इस भारत भूमि के भाग्य पर मैं अक्सर विचार करती हूँ। पूर्व मध्यकालीन युग में इसकी सभ्यता व संस्कृति कितनी उन्नत दशा में थी। तब कलाओं की खूब उन्नति हुई। राजाश्रय पाकर साहित्य व कला के विभिन्न अंगों का उन्नयन हुआ। विस्तार के भय से मैं केवल एक झाँकी दूँगी। संस्कृत साहित्य में कवि कालिदास, भारवि, महाकवि भट्ट, माघ, भवभूति, श्रीहर्ष, विल्हण, कलहण जैसे महान कवि थे। दर्शनशास्त्र में वाचस्पति मिश्र, जयन्त भट्ट, कुमारिल भट्ट जैसे प्रसिद्ध रचयिता थे। आयुर्वेद विद्या में चरक मुनि, सुश्रुत, चक्रपाणि दत्त, नागार्जुन की कीर्ति दूर-दूर देशों में फैली हुई थी। गणित के क्षेत्र में भारत के विकास पर संसार चकित था। वराहमिहिर, भास्कराचार्य, वाचस्पति के सिद्धांत अनूठे थे। ज्योतिष क्षेत्र में ये विद्वान् पारंगत थे। ज्ञान, बुद्धि, कला, साहित्य, शौर्य किसी भी दृष्टि से भारतीय पीछे न रहे—मगर इस धरती की समृद्धि, सम्पन्नता व कीर्ति ही उसके दुर्भाग्य का कारण बनी। आक्रमणकारी आते ही रहे। मुहम्मद गजनी, गोरी यहाँ पर

अपना राज्य स्थापित करने कहाँ आये थे ? लूट मचाकर यहाँ की सम्पत्ति, सोना, चाँदी ले जाना ही उनका उद्देश्य था। गरिमामयी कन्नौज में गजनी ने जो लूटपाट मचायी, उसे देखकर मैं आतंकित हो उठी। उसने बड़ी निर्दयता से इस सुन्दर नगरी का ध्वंस किया। उसने सात बार भारत पर चढ़ाई की। सातों बार वह हारा, पर आठवीं बार सफल हो गया। विजयोन्माद का उसका नशा भयावना था। इस भारत देश के दुर्भाग्य से सभी परिचित हैं। प्रतिभाशील नरेश, महान योद्धा व देशभक्तों से भरी इस धरती में द्रोहियों की कमी नहीं। बाह्य आक्रमणों द्वारा देश की बरबादी का कारण यहाँ के नरेशों की प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या व संकीर्ण दृष्टिकोण था। उन्हें स्वार्थी नर राक्षस कहना उचित होगा।

गोरी की सफलता में इस कन्नौज के राजा जयचन्द का बड़ा हाथ था। दिल्ली के शासक पृथ्वीराज चौहान से इसकी दुश्मनी थी। कारण उसकी पुत्री संयोगिता से पृथ्वी का प्यार था। संयोगिता बड़ी रूपवती थी। उसके रूप पर मैं स्वयं मुग्ध थी। पृथ्वीराज और उसमें बड़ा प्यार था। पृथ्वीराज तो अप्रतिम वीर योद्धा था। इनके प्रणय ने परस्पर की शत्रुता की आग में घी का काम किया। संयोगिता का स्वयंवर हुआ। निमंत्रित न होकर भी पृथ्वीराज गायक के वेष में आया था। जयचन्द ने पृथ्वी को अपमानित करने के लिए उसकी एक मूर्ति बनाकर द्वारपाल की जगह पर रख दी थी।

संयोगिता जैसी रूपसी पर राजाओं की आसक्ति में आश्चर्य कैसा ? स्वयंवर मंडप ठसाठस भरा था। संयोगिता वरमाला लिये आयी और उसने सीधे द्वार पर जाकर पृथ्वीराज की मूर्ति के गले में वह माला पहना दी। बस, छद्म वेशधारी पृथ्वी तत्क्षण उसे घोड़े पर लेकर सरपट भाग गया। जयचन्द अपमान से जल उठा। जयचन्द के स्वभाव से मैं परिचित थी। जो होना था, वही हुआ। गोरी के

पास दूत भेजा गया। आपसी विरोध का बदला लेने के लिए विदेशी आक्रमणकारी को न्यौता देना और उसकी मदद करना कितना भयंकर होगा···इसकी चिन्ता जयचन्द को जरा न रही। उस दिन··· इस ऊपजाऊ धरती पर फूट का जो बीज बोया गया, वह आज तक बना रहता है और रह-रह कर अपने विषैले दाँतों से डँसने लगता है। इस पर मैं अक्सर आँसू बहाया करती हूँ। गोरी के आक्रमण से दिल्ली की ही बरवादी न हुई, इस वर नगरी कन्नौज का भी नाश हो गया। जो मित्र बनकर आया, उसी गोरी ने शत्रु बनकर जयचन्द को मार डाला। उस करारी चोट के बाद कन्नौज फिर सिर न उठा सकी। इसकी सारी शोभा मिट गयी। आलोकमय दीपक सदा के लिए बुझ गया। और मैं !·· मैं भी इससे दूर हट गयी।

कन्नौज से मैं हरदोई जिले के दक्षिण-पश्चिम सीमा पर बहती हुई कानपुर में प्रवेश करती हूँ। मेरे दायें किनारे पर स्थित इस नगरी का एकमात्र कर्णपुरी भी है, पर इसका कोई पौराणिक व ऐति-हासिक महत्व नहीं, मगर उत्तर प्रदेश के प्रधान व्यापारिक केन्द्रों में एक है। यहाँ मेरी धारा में गहराई कम लेकिन विस्तार अधिक है। इस जिले के उत्तर-पूरब में मैं, पश्चिम में फर्रुखाबाद, एटा, दक्षिण-पश्चिम में यमुना, पूरब में फतेहपुर हैं। गर्मी के दिनों में भी यहाँ नावें नहीं चल पाती हैं। तटवर्ती प्रदेश रेतीला होने के कारण अधिक उपजाऊ नहीं। फिर भी कपास, ईख खूब उगता है। सूती व ऊनी वस्त्र उत्पादन के लिए यह नगरी प्रसिद्ध है। जूट, चीनी के कारखानों के इस औद्योगिक नगरी में चमड़े का धन्धा भी खूब चलता है। सच-मुच यह बड़ी व्यस्त व घनी आबाद नगरी है।

मेरी धारा इस नगरी की शोभा बढ़ाती है। इस जिले में 'ईसाम', 'नेसान' नामक दो छोटी नदियाँ मुझे पानी देती हैं। फतेहपुर से पाँचवें किलोमीटर पर 'पांडु नदी' आ मिलती है। बिलहौर में 'नई',

शिवराजपुरी में 'लोका', कानपुर में 'बोली', नरवर में 'बगईया', बोनरी आदि कई एक छोटी नदियाँ मुझे अपना पानी देती हैं। हरिद्वार में मुझसे जो नहर निकाली गई है, वह यहीं मुझसे मिल जाती है।

बिठूर को पार करती हुई मैं कानपुर में प्रवेश करती हूँ। बिठूर के निकट आते ही, नानासाहब और' लक्ष्मीबाई' की यादें मुझे घेर लेती हैं। बिठूर से कानपुर तक २७ किलोमीटर की दूरी पर है। इस छोटी-सी नगरी का प्राकृतिक सौंदर्य निराला है। मैं चलती हूँ और देखती हूँ। यहाँ बड़े सुन्दर घाट हैं। वायु में असीम आनन्द भरा है। सघन छायादार वृक्षों में, पक्षियों के कलरव गान में अतीव आनन्द है। मंदिर के कलश, कंगूरे झिलमिलाते हैं। मन गुजरे हुए दिनों की स्मृतियों में खोया-खोया-सा रहता है। पेशवा बाजीराव ने अपने जीवन के अंतिम दिनों को यहीं मेरे किनारे पर बड़ी शांति से बिताया था। लक्ष्मीबाई उनकी गोद में पली थी। छुटपन में ही बड़ी होशियार व चतुर थी। नानासाहव के साथ अस्त्र-शस्त्र संचालन, घुड़सवारी जैसे समस्त रण विद्याओं में वह दक्ष हो गयी थी। उस समय मुझे इसकी जरा भी आशा न थी कि यह वालिका अद्वितीय वीरांगना बन इस निराश-हताश भारत के रग-रग में देशभक्ति की आग भड़का देगी। विदेशी शासन के विरुद्ध आखिरी साँस तक जिसने युद्ध किया, उस वीर नारी को यह भारत कभी भूल सकता है?

मेरी उपनदी गोमती के किनारे पर लखनऊ नगरी है। पीलीभीत जिला ३२ किलोमीटर पूरब की तरफ इसका उद्गम स्थान है। इसकी कुल लम्बाई ८०० किलोमीटर है। वह वड़ी दूर तक घूमती-फिरती जाकर शाहजहाँपुर और खेरी में प्रवाहित होती है। फिर हरदोई, सीतापुर जिले की सीमा के रूप में बहती गोमती लखनऊ में प्रवेश करने तक दक्षिणमुखी है। लखनऊ के बाद बाराबंकी, सुलतानपुर,

जौनपुर जिले से होकर बहती है। लखनऊ के बाद 'बाराबंकी' सुलतानपुर, जौनपुर जिले से होकर बहती है। जौनपुर के बाद 'साई' नदी आकर गोमती को अपना पानी देती है। अन्त में गाजीपुर जिले में 'साइदपुर' में मुझसे मिलती है। गोमती रह-रहकर विकराल रूप धारण कर लेती है। इसके किनारे काफी ऊँचे हैं। इसलिए बाढ़ का खतरा कम होता है। फिर भी १९७१ में इसने प्रललंकारी रूप धारण करके सर्वनाश का हाहाकार मचा दिया। कानपुर से लखनऊ ७२ किलोमीटर है। यह नगरी गोमती के दोनों किनारों पर बसी है जो इसके सौंदर्य को बढ़ा देता है। पौराणिक महत्व न होने पर भी ऐतिहासिक नगरी के रूप में लखनऊ प्रख्यात है। मुगलों के जमाने में खासकर नवाबों के शासन काल में इसकी शान-शौकत बेमिसाल थी। आँखों को चौंधिया देने वाले उज्ज्वल दीप-सा इसका प्रकाश सारे भारत को चकाचौंध कर रहा था। मुगलों की कला, सभ्यता व संस्कृति का यह केन्द्र था न!

लखनऊ को 'बगीचों की नगरी' कहना बिलकुल उपयुक्त है। मनोहर फुलवारियाँ, मनोरम वाटिकाएँ, हरे-भरे उपवन, रंगीन फूलों की क्यारियाँ दर्शकों को अभिभूत करतीं हैं। नवाबों के राजमहल, वास्तुकला के उत्कृष्ट नमूने के रूप में खड़े भव्य भवन यहाँ भरे पड़े हैं। यह नगरी केवल अतीत का स्मरण ही नहीं दिलाती, बल्कि भविष्य का विश्वास भी भरती है।

नवाबों के जमाने में लखनऊ विलासिता के रंग में रँग गया था। नगर के धनी व अमीर ऐश व आराम में मस्त थे। गाँवों से सारा धन शहर में आ जाता और शराब व भोगों में बहाया गया। धनी, निर्धन हर किसी के दिल में जिन्दगी का तुल्फ उठाने की धुन सवार थी। आमोद-प्रमोद में लोग मदमस्त थे। प्रेम और शौर्य जीवन का अभिन्न अंग बना था।

कितने ही नवाबों के शानदार दरबारों की मूक साक्षी थी यह नगरी। शायर, गायक, नर्तकियाँ और कलाकार, राजनीति के दाँव-

पेंच में शतरंज के मोहरे बने थे। साहित्य, संगीत और कला के क्षेत्र में लखनऊ शैली निराली है। 'कथक' नृत्य का बोलबाला यहाँ पर है। कर्ण परम्परा की कथानुसार यह नगरी 'लक्ष्मण' द्वारा निर्मित मानी जाती है। इसलिए इसको 'लक्ष्मणपुरी' भी कहते हैं। 'लक्ष्मण का टीला' नामक जगह पर ही पहले-पहल यह नगर आबाद हुआ। नवाब आसिफतुल्ला के शासन काल में ही इस नगरी का भाग्य खुला। १८५६ में ही इसकी आबादी दस लाख थी। नवाब स्वभाव से कला-प्रेमी और इमारतें बनवाने के शौकीन थे। खासकर आसिफद्दौला में यह शौक गजब का था। वह बड़ा रसिक व बुद्धिमान था। अन्य नवाबों सा उसने पैसों को बेकार बहाया नहीं। संगमरमर और नक्कारी में पैसा बरबाद न करके चूना व पत्थर को लेकर वास्तुकला के उत्कृष्ट नमूनों का निर्माण किया।

१७८४ ई० में भयंकर अकाल पड़ा। उसकी याद करते आज भी मेरा दिल काँप उठता है। गोमती ने उसके बारे में बहुत सी हृदय-विदारक कहानियाँ सुनाई हैं। लोग भूखों मर रहे थे। लोगों का कष्ट देखकर नवाब ने 'इमामबाड़ा' बनवाने का काम शुरू कर दिया। आज भी इसे देखनेवाले चकित रह जाते हैं। इसका गुम्बज दुनिया भर में सबसे बड़ा माना जाता है। लखनऊ में कई एक राजमहल भरे पड़े हैं। इसका कारण बड़ा विचित्र है। अगर एक नवाब की मृत्यु हो जाती तो उसका वारिस मृत नवाब की शवयात्रा में न भाग लेता, न उसके राजमहल में वास करता। इसलिए हर नवाब गद्दी पर आसीन होते ही नया राजमहल बनवाता। आफिसद्दौला के भाई सआदत अलिकान ने अपनी प्यारी बेगम खुर्शिद के लिए खुर्शिद महल बनवाया। क्लोड मार्टिन नामक फ्रांसीसी कलाकार ने इसका निर्माण किया। वाजिद अलिकान के शासन काल में बनी इमारतों में पूर्वी और पश्चिमी कला का सुन्दर समन्वय पाकर मन विस्मय-विमुग्ध हो जाता है।

यहाँ की इमारतों में भारतीय भवन-निर्माण कला पर आधारित महल और पाश्चात्य ढंग पर वनी इमारतें दोनों हैं। छोटा इमामबाड़ा, जुम्मा मस्जिद, बड़ी जुम्मा मस्जिद, 'सत मंजिल घंटाघर' किला और विभिन्न महल दर्शनीय हैं। नवाबों के कला-प्रेम और रुचियों की इतने विस्तार से चर्चा करते वक्त एक मुख्य बात का उल्लेख किये बिना रहना कठिन होता है। नवाबों ने अपने ऐहिक सुख व कलाभिरुचि के लिए करोड़ों रुपयों को खर्च किया, मगर जनता के लिए, जन-जीवन की भलाई के लिए वे कुछ न कर सके।

वाजिद अली शाह के समय यह नगरी कम्पनी के वश में हो गयी। नवावी शासन का अन्त हो गया। १८५६ फरवरी महीने की ४ तारीख को ईस्ट इण्डिया कम्पनी के रेसिडेण्ट सबेरे आठ बजे जर्द महल पर पहुँचा और सुलतान वाजिद अली शाह को निम्नलिखित सूचना दी, "अवध की जनता की खुशहाली व सुशासन के लिए कम्पनी ने राज्य का शासन अपने हाथ में ले लिया है।"

और इस तरह बिना खून बहाये, युद्ध किये नवाब पदच्युत कर दिया गया। वाजिद अली खाँ ११वाँ नवाब था। इसके बाद वजीरों का शासन चला।

वाजिद अली की चर्चा करते वक्त बेगम हजरत महल की याद आये विना नहीं रहती। इस वीरांगना का ख्याल आते ही मेरी छाती गर्व से फूल उठती है। भारत की नारियाँ हर क्षेत्र में पुरुषों से कम नहीं थीं। इसका समय वेदकाल ही नहीं, १८५७ का प्रथम स्वाधीनता संग्राम भी रहा। बेगम की वहादुरी गजब की थी। दिल्ली के पतन के वाद भी उसने हिम्मत न हारी। अवध और लखनऊ आजादी के आन्दोलन को जारी रखा। वाजिद अली शाह के कैद होने पर उसका बेटा 'बिरजू' गद्दी का वारिस वनाया गया। बिरजू नाबालिग था इसलिए बेगम हजरत महल के हाथ में शासन का भार सौंपा गया।

अवध के सामन्त व छोटे-मोटे अमीर-उमराओं ने हजरत महल के शासन को प्रसन्नता से स्वीकार कर लिया। बेगम खूबसूरत ही नहीं होशियार भी थी। बड़ी कुशलता से उसने राज्य किया। राजबाला कृष्ण सिंह उसके मन्त्री थे। कम्पनी के शासन के विरुद्ध आखिरी क्षण तक लड़ने को वह तैयार थी। उसने उनके कुचक्रों को बड़ी सरलता से विफल किया, लेकिन झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की भाँति हजरत महल का भी मनोरथ विफल हुआ।

स्मृतियाँ निराली होती हैं। अतीत के गहन गह्वर से स्मृति रूपी मणियों को एक-एक कर निकाल एक धागे में गूँथना चाहती हूँ, लेकिन क्या करूँ। बीच-बीच में यादों की रोशनी धुँधली पड़ जाती है। मणियाँ बिखर जाती हैं। कभी कुछ स्मृतियाँ मन को अतीव कड़वाहट व उदासी में डुबो देती हैं और मैं भटक जाती हूँ।

लखनऊ की कहानी को आगे कहने का मेरा मन न रहता है। उन्नाव के पश्चिम व दक्षिणी सीमा से होकर मैं रायबरेलो में पहुँचती हूँ। यहाँ पर केवल ८६ किलोमीटर तक पहुँचती हूँ, मगर उसमें गहराई अधिक है। मेरा पाट भी इतने विस्तार का है कि नावों द्वारा ही मुझे पार कर सकते हैं। साल भर नावों का आवागमन चलता है। मेरे तटवर्ती प्रदेश दलदले हैं, फिर भी थोड़ा-बहुत कृषि कार्य चलता है।

फतेहपुर जिले के उत्तरी हिस्से में प्रवेश कर मैं वहाँ से दक्षिण पूरब की तरफ मुड़कर २२ किलोमीटर चलती हूँ। इसके उत्तरी छोर को पार करने के उपरान्त ३७ किलोमीटर तक इलाहाबाद जिले की उत्तरी सीमा के रूप में प्रवाहित होकर 'पट्टी नागौर' के पास इलाहाबाद में प्रवेश करती हूँ। यहाँ मेरा पैडा चौड़ा है। इसके अलावा मैं घूमती-फिरती बलखाती चलती हूँ। मेरे तट पर कई गाँव और कस्बे हैं। 'फाफा मऊ' के निकट मैं एकाएक उत्तर-पूरब की तरफ मुड़ जाती हूँ। यहाँ पर रेलवे का एक बड़ा पुल है। इलाहाबाद किले के निकट मैं दक्षिणमुखी बन जाती हूँ।

इलाहाबाद उत्तर प्रदेश के बड़े नगरों में एक है। तीर्थराज प्रयाग के कारण यह बड़ा धार्मिक व सांस्कृतिक क्षेत्र भी बना है। ऋग्वेद काल से इस क्षेत्र का बड़ा महत्व था। वर्ष भर यहाँ यात्रियों की भीड़ लगी रहती है।

'जय गंगा मैया', 'गंगा माई की जय बोलो' की आवाजें हवा में तैरती आ रही हैं। मेरे पास आने वाले उन यात्रियों की उद्वेगपूर्ण पुकार मुझे गद-गद बना देती है। युग-युग से, अनादि अनन्त काल से शत-शत कंठों से वह विह्वल पुकार मैं सुनती आ रही हूँ। हारा, शिथिल, शरीर मेरे पानी में गोते लगाते ही नया उत्साह व जोश का अनुभव कर लेता है। मेरा पानी उनका पापमोचन कर देगा ··बस यही विश्वास उनमें नये विश्वास और आत्मबल को भर देता है—यह देखकर स्वयं मुझे आश्चर्य होता है।

ऋग्वेद कहता है–'श्वेत धारा गंगा और कालिंदी की श्यामल धारा की संगमसइ की प्रयाग में जो गोता लगाते हैं, उन्हें मोक्ष प्राप्ति होती है। अविचल मन से जो यहाँ शरीर त्याग करते हैं, वे परम गति को प्राप्त करेंगे।' हाँ ··उन दिनों से लेकर हमारा संगम मोक्ष-दायिनी मांना जा रहा है। प्रजापति ने यहाँ पर यज्ञ किया था। इसके अलावा भरद्वाज मुनि का आश्रम भी यहीं पर था। उसी के निकट पहले हमारा संगम होता था। आजकल हम दोनों बहुत दूर हट गयी हैं। वर्षा के दिनों में भारी बाढ़ के कारण मेरा रूप विकराल हो जाता है। बाढ़ की निर्ममता व प्रचण्डता कितनों के प्राण ले लेती है। लहलहाते खेत क्षण भर में उजड़ जाते हैं; गाँव के गाँव डूब जाते हैं; पर मुझे 'दानवी' कहने वाले एवं मेरे हरहराते प्रवाह को देखकर आतंकित होने वाले यदि प्रयाग में मेरा दर्शन करें तो मेरे गंभीर सौंदर्य पर मुग्ध हो जाएँगे। बड़े उल्लास से अंग-अंग में निराली शोभा लिए बड़ी शान्ति से लहराती आती हूँ। लोग उत्साह से मेरी

धारा में डुबकी लगाते हैं। भारी चट्टान-सी दिल को दबाने वाली वेदना को कितने ही लोग मेरे कानों में सुनाने के लिए विह्वल रहते हैं। मानव मन की अकथनीय व्यथा, उनके अन्तर्मन की कमजोरियों को मुझसे बढ़कर कौन जान पाएगा ? कोई निन्दा करे या पूजा करे, मुझ पर विश्वास करे या अविश्वास करे, मेरे लिए सब बराबर है। उच्च, नीच, अमीर-गरीब···कोई भेद यहाँ पर नहीं है। अगर किसी में क्षमता हो तो मेरी हर लहर उसे लाखों कथाएँ सुनाएगी।

वाल्मीकि, कालिदास, बुद्ध, शंकराचार्य, महावीर व रामानन्द को अपने शीतल पानी के स्पर्श से मैंने आनन्दित किया है। मेरे तट-वर्ती प्रदेश उनकी पवित्र चरणधूलि से पावन हुये हैं। उनकी स्मृतियाँ, उन महानों की अमृत वाणी भुलाए नहीं भूलतीं। महान सम्राटों के वीर गर्जनों का मैंने श्रवण किया है। चन्द्रगुप्त, अशोक की परम्परा का पालन करने वाले महाराजा हर्ष के दान यज्ञ को मैं कभी न भूल पाती। कन्नौज में जिसे उसने देखा था, वही चीनी यात्री हर्ष के साथ भी यहाँ आया था। यह तो दान का प्रधान क्षेत्र है न ! प्राचीन काल से यह प्रथा चली आती है कि राजा, महाराजा, धनी-मानी व्यक्ति यहाँ आ दान दिया करें। हर्ष हर पाँचवें वर्ष प्रयाग में आकर अपना सर्वस्व दान दिया करता था। अब छठवीं बार आया था।

मेरे और यमुना के मध्य स्थित मैदान पर एक धार्मिक सम्मेलन हुआ। राजा-महाराजा, धनी-मानी, बौद्ध-भिक्षु आदि के अतिरिक्त लोगों की भारी भीड़ एकत्र थी। श्रमण, बौद्ध भिक्षु, अर्हत, ब्राह्मण आदि दान लेने आये थे। एक विशाल गोलाकार चबूतरे पर, पाँच वर्ष का संचित कोष सोना, चाँदी, रत्न, मोती, रेशमी वस्त्र आदि के ढेर के ढेर लगे थे। हर्ष अपना यह सारा धन एक दिन में वितरण

कर देता था। सबके लिए भोजन की व्यवस्था की गयी थी! पहले दिन भगवान बुद्ध की मूर्ति प्रतिष्ठित हुई और कीमती वस्त्रों का दान हुआ। दूसरे दिन सूर्यदेव की प्रतिष्ठा कर, दान का वितरण हुआ। तीसरे दिन शिवजी की मूर्ति प्रतिष्ठित कर सोने की अशर्फियाँ, मोती, वस्त्र, फूल, चंदन, पान-सुपारी सब दिया गया। ब्राह्मणों, वौद्ध, अनाथों, दीन-दुखियों और अन्त में बाहर से आये व्यक्तियों को भी दान दिया गया।

लगभग एक महीने तक यह उत्सव चलता सारा कोष खाली हो जाने पर हर्ष ने अपने मुकुट व आभरण, बहुमूल्य वस्त्र तक का दान दे दिया। अन्त में अपनी बहन राज्यश्री से एक वस्त्र लेकर धारण करने वाले महाराजा हर्ष—जैसा महादानी आज तक मैंने नहीं देखा। कितना विशाल हृदय था उसका? उसके धार्मिक सम्मेलन और दान उत्सव के कोलाहल में मैं अपनी सुध-बुध भूल जाती हूँ।

लीजिए ··मेरी बहन यमुना भी आ गयी है। मेरी बड़ी बहन! बड़ी शांत व गम्भीर है वह। मेरे जैसा न चंचल है न आवेगमयी। रंग भी उसका श्यामल है, मगर सौंदर्य में वह जरा भी कम नहीं। हम दोनों का जन्म-स्थान एक ही पर्वतमाला है, फिर भी सारे पहाड़ी मार्ग पर हमारी कहीं भी भेंट नही होती है। अपनी दीदी से मिलने के लिए मैं बड़ी उत्सुक हूँ। गगनचुम्बी हिमाच्छादित शिखर से बह आती हूँ। अबोध बालिका हूँ। किशोर वय की नादानी है, दुनिया क्या जानूँ? मेरे आसपास, आगे-पीछे प्रकृति का काव्यात्मक सौंदर्य मुसकुराता रहता है। बेसुमार जंगल, झरनों का कल गान। पक्षियों का मादक कल-कूजन, अभ्रभेदी वृक्षावलियाँ, हरी चादर ओढ़ पड़ी धरती। लहलहाते खेत,···उत्तरकाशी तक मेरा यात्रा-मार्ग रोमांचक है। धीरे-धीरे दिवास्वप्न की मादकता मेरी आँखों में छा जाती है। यौवन की देहली पर आ खड़ी मुझको, अलकनन्दा आकर

अपने आलिंगन में समेट लेती है। हमारे इस संगम के उपरान्त मेरी धारा की प्रचण्डता और अपार जलराशि विलक्षण रूप धारण कर लेती है। हरिद्वार में कई धाराओं में बँट जाती हूँ और कन्नौज, कानपुर से होकर यहाँ आती हूँ। यमुना तो कुरुक्षेत्र, पानीपत व मैदान से होकर राजधानी दिल्ली में पहुँचती है। फिर मथुरा व वृन्दावन होते हुए मुझमें मिलने की आतुरता से बढ़ी चली आती है।

हमारे संगम का वर्णन कालिदास के मुँह से सुनिये—'क्वचित प्रभा लेपमित इन्द्रनीलैर···'

'सीते! देखो न! गंगा के प्रवाह में यमुना की लहरें आकर इसके प्रवाह को खण्डित कर रही हैं। देखो! अद्‌भुत दृश्य है। लगता है, मोतियों की माला गुँथा हुआ इन्द्रनीलमणि, अपनी चमक से मुक्तावली की कांति को प्रभाहीन कर रहा है। सीते! श्वेत कमलों की हार में मानों नीलकमल जुड़ा हुआ हो या मानसरोवर में तैरते हंस पक्षियों के मध्य काले रंग की कादम्ब पक्षी उठ रही हो, ऐसा लगता है। सीते···संगम का यह दृश्य ऐसा लगता है मानो श्वेत चन्दन के लेपन के मध्य काली रेखा खिंच गयी हो या शरत्‌कालीन शुभ्र मेघों के बीच में आकाश की नीलिमा उमड़ आती हो। सीते! यमुना का यह संगम ऐसा लगता है, मानो भस्मावृत महादेवजी के शरीर पर आभूषण सा लिपटे हुए काले नाग हों।'

कालिदास ही नहीं और कितने ही कविगण पण्डितों व रसिकों ने मेरी सौन्दर्य-सुषमा का वर्णन किया है। संस्कृत कवि पण्डित जगन्नाथ कवि ने 'गंगा लहरी' नामक काव्य की रचना की है। यहाँ मुझे त्रिवेणी कहा जाता है। यमुना के अलावा सरस्वती भी यहाँ पर मुझसे मिलती है। लेकिन आप उसकी धारा को देख न पाएँगे। वह तो अन्तर्वाहिनी है। 'सरस्वती' शब्द का अर्थ है—'सम्पन्न सलिला। ऋग्वेद कालीन नदियों में वह भी एक है। आजकल कहीं-कहीं प्रकट होती है और कहीं अन्तर्वाहिनी बनी रहती है।

हम तीनों की धाराएँ वेणी सी गुँथी हुई हैं, इसलिए 'त्रिवेणी' का नाम पड़ा है। मेरी धवल धारा में यमुना की श्यामल धारा का मिलन अत्यन्त रंगीन है। एक कवि कहता है, 'प्रयाग देखने में ऐसा लगता है, मानो सिंहासन पर आसीन सम्राट् के तरफ दोनों तरफ दो सुन्दर युवतियाँ चामर डुला रही हों। अक्षय वट रूपी छत्र की छाया में विराजमान प्रयागराज को गंगा श्वेत चामर और यमुना श्यामल चामर डुला रही है।

कौरव और पाण्डव अपने शैशव काल में मेरे तट पर खेलते फिरते थे। एक दिन दुर्योधन ने भीम को कुछ पिला दिया कि कि वह बेहोश हो गया। दुर्योधन ने उसे मेरे प्रवाह में धकेल दिया। पर मेरी लहरियों ने उसे डुबोया नहीं, किनारे पर लगा दिया। पाण्डवों का नाश करने के लिए दुर्योधन जो कुछ करता रहा, उस पर मैं अत्यन्त दुखी हो जाया करती थी। लाख का भवन मेरे किनारे पर ही बना था।

नीले मेघ से श्यामल वर्णी राम और उनके अनुज लक्ष्मण को विश्वामित्र के साथ मैंने अनेक बार देखा। अब उन तेजस्वी बालकों की वीरता व प्रतिभा पर मैं मुग्ध थी। विश्वामित्र मुनि से मेरी गाथा सुनने को वे दोनों कितने उत्सुक थे। दुबारा वनवास के समय छाया-सी अनुगामिनी वनी, सहधर्मिणी सीता भ्रातृ-सेवा को ही अपने मानने वाले लक्ष्मण को पुनः देखकर मैं आनन्दित होती थी। निषादराज की नाव पर उन्होंने मेरी धारा पार की थी।

उन दिनों से लेकर आज तक यात्रियों का ताँता-सा लगा रहता है। अशोक की लाट से लेकर अकबर का किला, कम्पनी की इमारतें तक यहाँ पर हैं। प्रयाग धार्मिक क्षेत्र है न! पितृकर्म, श्राद्ध, पुण्य, दान, धर्म के लिए यही श्रेष्ठ स्थान माना जा सकता है। माघमेला और कुम्भमेला धूमधाम से मनाया जाता है। कोने-कोने से लोग आते

हैं। साधु, संन्यासी, पण्डे और भिखारियों की कोई कमी नहीं। मेले की रौनक निराली होती है। इस कोलाहल में मैं खो जाती हूँ।

यहाँ मन्दिरों की कमी नहीं। लेकिन 'वेणी माधव' यहाँ के प्रधान देवता हैं। 'अक्षय वट' और 'काम्यरूप' तीर्थ मुख्य हैं। काम्य रूप यानी 'इच्छित वस्तु प्रदान करने वाला तीर्थ'।

एक जमाना था कि लोग इस कुएँ में कूदकर आत्महत्या कर लेते थे। उनका विश्वास था कि इस कुएँ में प्राण त्यागने से इस जन्म की कामनाएँ अगले जन्म में पूरी हो जाएँगी। अकबर ने इस प्रथा पर प्रतिबन्ध लगाया। मैं भी इस प्रथा पर दुखी थी। पर क्या करूँ? मेरे पास आने वाले हर व्यक्ति के विश्वास व विचार भिन्न होते हैं। चाहे वह अन्ध-विश्वास ही क्यों न हो, वही उनको आत्म-बल व शक्ति प्रदान करता है न? मैं सबको प्यार से सहेज लेती हूँ, फिर भी मानव के अज्ञान पर मेरा मन दुखी हुए बिना न रहता।

अक्षयवट चिरकालीन है। जब अकबर ने मेरे तट पर किला बनवाया, तब वह किले की चहारदीवारी के भीतर आ गया। यहाँ पर एक पाताल गुफा है। वहीं पर आजकल अक्षयवट का दर्शन किया जा सकता है। त्रिकोण रूपी इस गुफा के अन्दर विविध शिला मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। अक्षय वट का पूजन पुनीत माना जाता है। इसमें शाखाएँ हैं, मगर पत्ते नहीं, फिर भी यह आज तक नहीं सूखा है। भक्त फूल चढ़ाकर मेरे जल से इसे सिंचित करते रहते हैं। लोग मेरे संगम पर नहाकर सीधे यहाँ आते हैं। संगम से मेरे जल को छोटे-मोटे घटों व बरतनों में ले जाना भी वे नहीं भूलते। घर-घर में मेरा जल पवित्र पानी के रूप में पूजा जाता है।

संगम का दृश्य बड़ा मनोहर है। हम दोनों नदियों का पाट विस्तृत व विशाल है। दूर-दूर तक अगणित नावें व स्टीम लांच तैरते रहेंगे। तट पर रंग-विरंगे छत्र व झंडियाँ हवा में उड़ती दिखायी

पड़ेंगी। लोगों के झुंड के झुंड भजन गोष्ठियाँ और कीर्तन करते रहते हैं। विभिन्न सुर ध्वनियाँ, अलाप, श्लोक पाठ वातावरण को गुंजाते रहते हैं। कोई भक्ति से गद्‌गद् होता रहता है, कोई मेरे सौंदर्य का रसपान करता रहता है। किसी को नाव पर सैर करने की धुन सवार होती है, किसी को वेणीदान कर पंडा को दान-दक्षिणा देने की इच्छा होती है। मिट्टी के छोटे-छोटे दीप जलाकर कोई मेरी पूजा करता है और कोई दोने में फूल चढ़ाता है। किले के दायीं तरफ यमुना और तीनों तरफ खाइयाँ हैं।

इलाहाबाद को प्राचीन और नवीनता की संगम स्थली कहें तो उपयुक्त होगा। ऋग्वेद काल से बीसवीं सदी तक यह नगरी अक्षुण्ण रहती आयी है। आठ किलोमीटर घेरे वाला यह शहर दिनों-दिन विस्तृत होता जा रहा है। नये-नये उपनगर, नई-नई बस्तियाँ बन रही हैं। आज इसकी औद्योगिक उन्नति भी खूब हुई है। एलनगंज से किले तक अकबर ने मजबूत बाँध सी दीवार खड़ी करवा दी है। इस दीवार के बनने के पूर्व मेरी बाढ़ का पानी नगर में प्रवेश कर जाता था। अकबर का यह किला बड़ा सुन्दर व मजबूत है। उसने परकोटों, गजमहल, मीनारों आदि को कलात्मक रूप दिया था। मगर बाद में जो इमारतें बनीं, व दीवारें उठीं उन्होंने इसकी गंभीरता को बिगाड़ दिया है। पहले यमुना की तरफ चालीस खम्भों वाला एक सुन्दर मंडप था। आजकल उसके भग्नावशेष तक नहीं मिलते हैं। इस किले को बनवाने का काम लगभग ४५ साल तक चलता रहा। मुगलों के कई सुन्दर बाग-बगीचे, महल, मस्जिदें व मकबरे यहाँ पर बड़ी संख्या में मिलेंगे।

अकबर का बेटा सलीम, जो बाद में जहाँगीर के नाम से गद्दी पर बैठा था, ने अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह करके इस किले को अपने अधिकार में कर लिया था। विद्रोही बेटे को वश में लाने के लिए

अकबर ने जो उपाय किये थे, उसे देखकर मैं चकित-सी रह गयी। मुगलों का भोग-विलास और आमोद-प्रमोदमय जीवन व ठाट पर मेरी आँखें चौंधिया जातीं। मैं ही क्या ? इस किले की एक-एक ईंट उन दिनों की हजारों गाथाएँ सुनाती है। अन्तपुर, दरबार मंडप, नाच के रंगमंच, रंगीन फुलवारियाँ कितने मनोरम थे! नूपुरों का मधुर गुंजन जलक्रीड़ा करती, उल्लासमय जीवन बिताने वाली युवतियाँ कभी-कभी याद आती हैं। मैंने इस भोग-विलास भरे जीवन के बीच कुछ अनोखे व्यक्तित्व भी देखे, जैसे औरंगजेब। प्यास बुझाने के लिए भी मधुपान करने वाले मुगल बादशाहों में केवल वही औरंगजेब पानी के अलावा कुछ न पीता था।

वारेन हेस्टिंग्स के अधिकार में आने के बाद इस किले में पायलों की रुनझुन की मधुर ध्वनि के बदले सैनिकों की बूट और तोपों का गर्जन ही सुनाई देने लगा। आजादी के प्रथम युद्ध के बाद रानी विक्टोरिया की घोषणा का एलान यहीं पर हुआ।

प्रयाग के बाद मैं दक्षिणीमुखी हो जाती हूँ। मेरे दोनों किनारों पर गाँव व कस्बे हैं। लगभग ९६ किलोमीटर बहने के बाद मैं मिर्जापुर जिले में प्रवेश करती हूँ। सबसे पहले बटोही परगना में किरौंदिया गाँव में आती हूँ। यहाँ पर गोलाकार रेखा-सी घूम जाने से उसे तीनों ओर से घेर लेती हूँ। इसके आगे जरा झुक कर, पूरब की तरफ चलती मैं, मिर्जापुर के आगे उत्तर की ओर बढ़ती हूँ। लेकिन थोड़ी दूर पर, फिर से दक्षिण की तरफ घूम जाती हूँ। चुनार के आगे उत्तर-पश्चिम की तरफ प्रवाहित होकर काशी की ओर बढ़ती हूँ।

काशी के निकट पहुँचते-पहुँचते मैं कितनी अधीर और उतावली हो उठती हूँ इसकी कल्पना तक शायद आप कर न पाएँगे। अपने आराध्य महादेव का दर्शन कर, अनादि, अनंत काशी नगरी के निकट पहुँचते ही असीम आनन्द की विह्वलता मुझे बेचैन कर देती है।

वनारस, मिर्जापुर जिलों की सीमा पर प्रवाहित मैं अर्द्ध चंद्राकार रूप में लगभग ३८ किलोमीटर चलती हूँ। मेरे बाहरी किनारे काफी ऊँचे हैं। लेकिन भीतरी भाग रेतीले होने के कारण कुश व जंगली घास उगते हैं।

रामनगर की डीह से टकराकर मेरी धारा मुड़ राती है। यहाँ पर मेरा पाट चौड़ा है और गहराई भी अधिक है। मैं करारा कंकीराला तट के नीचे बहती हूँ। इस जिले में 'सुबहा', 'असी' जैसी छोटी नदियों के अलावा 'बरना' और 'गोमती' ही मुझसे मिलने वाली मुख्य नदियाँ हैं। असी नाले के संगम से लेकर ऊँचे कगार पर मंदिर और घाट व मकान बने हैं। दायाँ किनारा बालुकामय है। 'बरना' के संगम के कुछ आगे तक किनारा ऊँचा ही रहता है। यहाँ पर मैं अपनी धारा बदल नहीं पाती। ताँतेपुर में मेरा किनारा जरा नीचा है। गाजीपुर और बनारस की सीमाओं को विभाजित करती हुई मैं सैदपुर से गाजीपुर जिले में घुसती हूँ।

'बरना' इलाहाबाद और मिर्जापुर जिलों की सीमा पर फूलकर ताल से निकलती है और थोड़ी दूर तक जौनपुर और बनारस की सीमा बनती है, फिर पूरब की तरफ घूम जाती है। विसुही नदी इसे अपना पानी देती है। 'सराय मोहाना' पर इसका मुझसे संगम होता है।

इस नगरी की बनावट अद्भुत है। बरना और असी के बीच में स्थित इस प्रदेश के सौंदर्य से प्रभावित होकर आर्यों ने इस नगरी की स्थापना की थी, जो आज तक मेरे तट पर बड़ी गम्भीरता से सिर ऊँचा किये खड़ी रहती है। आज भी उस प्राचीन नगरी को राजघाट के निकट देख पायेंगे। आर्य लोग पहले पहल यहीं पर आबाद हुए थे। फिर यह नगरी धीरे-धीरे दक्षिण की तरफ विकसित होने लगी। क्रमशः पश्चिम, दक्षिण-पश्चिम की तरफ भी इसका विस्तार हुआ।

उत्तर की तरफ जितना विस्तार है, उतना दक्षिण की तरफ नहीं है। जरा हेटा व सँकरा है। आजकल 'बरना' नदी के दक्षिण-पश्चिम और उत्तर-पश्चिम की ओर उपनगरों का काफी विस्तार हुआ है।

सड़कों द्वारा यातायात की सुविधाएँ बढ़ने के बाद तटीय नगरों का महत्त्व कम हो गया है, लेकिन उन दिनों से लेकर आज तक काशी नगरी का महत्व जरा भी कम नहीं हुआ है। प्राचीन गरिमा के अलावा धर्म, शिक्षा और व्यापार का केंद्र होने से इसका सांस्कृतिक महत्व रहता है। प्राचीनता की परिपोषक नगरी धर्म और विभिन्न संस्कृतियों की संगम-स्थली है। विभिन्न धर्मों का केन्द्र होने पर भी शैव धर्म का केन्द्र बना रहना इसकी एक और विशेषता है।

इसका स्थल-पुराण सुनिए—

'कल्पांत पर प्रलय के कारण सारी धरती जलमग्न हो गयी। देवगण घबड़ा उठे। ऋषि, मुनि और देवताओं ने अंत में महाविष्णु की शरण ली। शंख, चक्र, गदाधारी विष्णु भगवान् ने उनकी प्रार्थना सुनी। करुणामय होने के कारण वे उनकी सहायता करने आए। पाताल में धँसी हुई पृथ्वी को ऊपर लाने के लिए उन्होंने वराह का अवतार लिया और अपनी एक सींग पर पृथ्वी ऊपर ले आये। शिव का ध्यान करने से विष्णु को पृथ्वी का उद्धार करने की शक्ति प्राप्त हुई थी। प्रलय की बाढ़ में भी काशी नगरी जलमग्न न हुई थी। इसी कारण इस नगरी की महिमा अद्वितीय बनी है।'

काशी का इतिहास इस स्थल-पुराण की सभ्यता का परिचायक है। डैबर के तट पर स्थित रोम से मेरे तट पर स्थित काशी महत्वपूर्ण है क्योंकि यह रोम से अति-प्राचीन है। कहते हैं, मिस्र की नगरियाँ प्रागैतिहासिक काल की हैं, लेकिन आज उन नागरियों की केवल पुस्तकों में ही चर्चा है। न उनका कोई भग्नावशेष शेष है और न कोई ऐतिहासिक चिह्न मौजूद है। सबके सब काल के बहाव में बह गये।

अविमुक्त क्षेत्र काशी नगरी से मैं अभिन्न हूँ। यह वह नगरी है जो कभी भी राजनैतिक दाँव-पेंच में शतरंज का मोहरा न बनी। फलतः राजनैतिक केन्द्र भी न बनी। किसी महान सम्राट या प्रखर व्यक्तित्व वाले शासक के कारण यह नगरी प्रख्यात नहीं हुई है। इसकी कीर्ति, ख्याति, गौरव व गरिमा का कारण इसकी अपनी विशिष्टता है। काशी की इस अनोखी महिमा पर मुझे आश्चर्य होता है। वह स्वयं ही गरिमामयी नहीं, जो भी यहाँ उससे आ मिलता है, उसे भी वह गौरव प्राप्त हो जाता है। किसी भी चीज को लीजिए—काशी का नाम अपने साथ जोड़कर वह अनोखा व अनूठा वन जाता है न ?

हजारों वर्षों से लोगों को अपनी ओर खींचते रहने वाली यह नगरी, लोगों के विश्वास रूपी अटूट नींव पर खड़ी है। अनन्त काल से लोगों की धार्मिक, सांस्कृतिक विश्वास, विकास का केन्द्र बनी यह भूमि केवल मानव को ही नहीं, कीड़े-मकोड़े जैसे अल्प प्राणियों की भी मोक्ष प्रदायिनी है। यह विश्वास हर हिन्दू की रग-रग में समाया रहता है। औरंगजेब ने इस नगरी के महत्त्व को घटाने की कोशिश की। 'काशी' के बदले इसको 'मुहम्मदाबाद' का नाम दिया, मगर यह नाम नहीं चल पाया। ३००० सालों पहले आर्यों की एक शाखा यहाँ आबाद हुई थी। उस शाखा के लोगों को 'कश्यिस' कहते थे। उन्हीं के नाम पर इसका नाम 'काशी' पड़ा है।

मनु के वंशज 'कासा' ने यहाँ शासन किया। उसके राज्यकाल में काशी समुन्नत दशा में थी। सैकड़ों साल तक चंद्रवंशी लोगों के द्वारा शासित यह प्रदेश महाभारत काल में मगध राजा जरासंघ के शासन काल में आ गयी। बाद में यह वत्स राज्य से मिला लिया गया। ब्रह्मदत्त कुरुमालों का राज्यकाल उल्लेखनीय है। उन दिनों ब्राह्मण ज्ञान व पांडित्य में अद्वितीय रहे, फिर भी क्षत्रिय राजा ज्ञानमार्ग में अपना दखल रखते थे। याज्ञवल्क्य जैसे तपस्वी, मैत्रेयी, गार्गी—जैसी

नारियाँ भी आत्मचर्चा, व शास्त्रार्थ में लगी रहतीं। समय बदलता रहा······कर्मकाण्डों, यज्ञादि क्रियाओं में लोगों की श्रद्धा कम होती गयी और बौद्ध एवं जैन धर्म ने सिर उठाया।

आर्यावर्त्त में चार महान साम्राज्यों का आविर्भाव हुआ। मगध, कौशल, वत्स, उज्जयिनी आदि। इन चारों साम्राज्यों में बड़ी स्पर्धा थी। जो इस नगरी के योग्य विधाता बने बारी-बारी से शासन करते रहे। कौशल नरेश की राजपुत्री मगध नरेश बिंबसार की रानी बनी तो कौशल नरेश ने इस नगरी को कन्यादान के रूप में दे दिया। बिंबसार को कारागृह में डालकर उसके पुत्र अजातशत्रु ने इस नगरी को अपनी अधीनता में लिया तो कौशल और मगध में संघर्ष छिड़ गया। काशी की कहानी बड़ी लम्बी है—शिशुनाग, नंद, मौर्य, शृंग, आखिर कण्व वंश ने यहाँ पर अपना झण्डा फहराया। नन्द वंश के बाद काशी की बड़ी दुर्दशा हुई। पुष्यमित्र के गद्दी पर बैठते ही काशी का भाग्य थोड़ा खुला। पुष्यमित्र बौद्ध धर्म का विरोधी था। इसके राज्य काल में धार्मिक कर्मकांड, पुरोहिताई और संस्कृत भाषा का बोलबाला रहा।

शायद प्रकाश और अन्धकार का खेल प्रकृति का अकाट्य नियम है। ग्रीकों की सेना ने काशी में लूट-पाट मचा दी। कुषाणों ने भी इसे न छोड़ा। विधर्मियों के हाथ से काशी छुड़ाने का श्रेय भारशिव नागों को है। इनके राज्य काल में काशी की जो उन्नति हुई वह फिर कभी न हुई। ये शिवोपासक थे। इन्होंने एक अश्वमेध यज्ञ किया, जिसकी स्मृति में मेरे एक घाट का नाम 'दशाश्वमेध घाट' पड़ा है। ७वीं शताब्दी में हर्ष के आधिपत्य में जो रहा, वही आठवीं, नवीं और दसवीं सदियों में, पाल वंश, राष्ट्रकूट, गुर्जर, प्रतिहारों और अन्त में कलचूरी वंश वालों के हाथ में आया। ग्यारहवीं शताब्दी का प्रथम चरण होगा··ऐसा ही याद है। गजनी के सेनापति नियालति-

गीन द्वारा इस नगरी की जो दुर्गति हुई उसको याद करते आज भी मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

इसके पहले आक्रमणकारी मुसलमानों की सेना यहाँ तक न पहुँची थी। फिर कन्नौज के राजा जयचन्द के शासनकाल में गोरी ने यहाँ भयंकर लूट-पाट मचा दी। गगनचुम्बी गोपुर गिराये गये। इसके बाद अठ्ठारहवीं सदी तक अन्धकार का युग था। गजनी, गोरी, बखित्यार खिल्जी—जैसे आक्रमणकारी लूट-पाट मचाकर जीते हुए प्रदेशों को सूबेदारों के हाथ सुपुर्द करके चले गये। ये सूबेदार अपने मालिकों से किसी भी दृष्टि में कम न थे। मन्दिर व देवालय क्यों लूटे गये ?...इसका भी कारण था। सोना, चाँदी, जवाहरात मन्दिरों में भरे पड़े थे। यही इनके नाश का प्रधान कारण था।

१८वीं सदी तक इस देश में तबाहियाँ होती रहीं। बाहर से जितने भी आक्रमणकारी आये उनमें सफलता कुछ को ही मिली। लेकिन बाहर से जो आये, वे इसी मिट्टी में जम गये। इस उपजाऊ मिट्टी में विदेशी, विधर्मी संस्कार भी पनपने लग गये। लेकिन जन-जीवन में शान्ति कहाँ ? स्थिरतापूर्ग शासन न था, न प्रशस्त धर्म। लोगों के धार्मिक विश्वासों को भारी धक्का लग गया था। मानव के चंचल मन को, विभिन्न मत-मतान्तर, सम्प्रदाय गुमराह कर रहे थे।

काशी राजधानी बनने का भाग्य खो चुकी थी। मगर उसका धार्मिक महत्व कभी कम न हुआ। इस तरह की धारणा रखने वालों को मैं कुतुबद्दीन के क्रूर कृत्य की याद दिलाती हूँ। आक्रमणकारियों में वही सबसे बड़ा निर्मम व निर्दयी था। इस सुन्दर नगरी को तहस-नहस करके मटियामेट करने की जिम्मेदारी उसी की है। १००० देवालयों को उसने मिटा दिया। बाद में आये अलाउद्दीन ने मन्दिरों को गिराकर उनके शिलाखण्डों से जौनपुर में एक मस्जिद खड़ी कर

दी। पद्मेश्वर आलय के खम्भों पर जो शिलालेख खुदे हुए थे उनको 'लाल दरवाजे' की मस्जिद पर देखा जा सकता है। खिलजियों के बाद जो बचा हुआ था, उसे पठान लूट ले गये।

बनारस वैभवहीन रह गया। उसकी शोभा, उसका कोलाहल खो गया। अकबर के शासनकाल में ही इसके जड़वत् शरीर में चेतनता लौट आयी। करवटें बदलकर साँस लेने लगी। लूट-पाट एक तरह से बन्द हुई। धार्मिक जीवन में नया प्राण आया। अकबर के हिन्दू मन्त्री टोडरमल और मानसिंह के सद्प्रयत्नों तथा अकबर की धार्मिक उदारता के कारण काशी का भाग्य फिर से चमक उठा। कई घाट और मन्दिर बने। इसी समय टोडरमल ने बाबा विश्वनाथ के मन्दिर का निर्माण किया। मैं प्रसन्न हुई ही थी कि काशी औरंगजेब की कुपित दृष्टि का शिकार हो गयी। टोडरमल का बनाया मन्दिर गिराया गया और उन्हीं शिल्पकारी खम्भों व शिलाखण्डों को ले जाकर ज्ञानवापी के निकट खड़ा कर दिया गया।

यह पुण्य नगरी इस तरह न जाने कितने आक्रमणों का शिकार बनी। रक्तपात व हत्याओं की गिनती नहीं। रक्त पानी-सा बहाया गया। मुगलों का अंत, मराठों और सिक्खों का नवोत्कर्ष, कम्पनी का आगमन सब कुछ कितना नाटकीय था। काशी उन दिनों अवध राज्य के अन्तर्गत थी। आजकल काशी का जो राजा है, उनके पूर्वज मंसाराम को काशी जागीर के रूप में मिली थी। वह व्यक्ति असाधारण बुद्धिमान था। उसके उपरान्त बलवंत सिंह ने थोड़े अर्से तक शासन की बागडोर सम्भाली, मगर इस कम समय के अन्दर उसने रामनगर का किला, खिड़की घाट आदि बनवाये और अपने अधिकार क्षेत्र का भी विस्तार किया। वह कला व विद्या-प्रेमी था। मराठों के लिए काशी परम पवित्र तीर्थ थी। अविमुक्त क्षेत्र काशी की प्राचीन महिमा व वैभव को पुनः स्थापित करने का इन्हें बड़ा

उत्साह था। कितने ही सुन्दर घाट बने। १८वीं सदी में ही इनका मनोरथ एक तरह से पूर्ण हो पाया।

काशी की उन्नति के पुनः निर्माण का बहुत कुछ श्रेय मराठों को है। पेशवा व हिन्दू नरेशों, महाजन और धनियों ने खूब धन दिया कि वे पक्के घाट, ब्रह्मपुरियाँ व मंदिरों का नवनिर्माण करें। आज आप बाबा विश्वनाथ का जो मन्दिर देख रहे हैं, वह रानी अहल्याबाई के द्वारा १७७७ ई० में बनवाया गया। १७७५ ई० में अवध के नवाब आसिफद्दौल्ला के अधिकार से यह पूरी कम्पनी के हाथ में आ गयी। १७५७ ई० के प्लासी और बक्सर युद्धों के बाद कम्पनी का ही हाथ ऊँचा रहा। इधर-उधर एकाध दीप जो टिमटिमाते रहे, वे भी बुझ गये।

अंग्रेजों से कोई घृणा नहीं, मगर उनका कम्पनी-शासन अन्याय और अधर्मों का केन्द्र था। प्रपंच, षडयंत्र, झूठ-फरेब, बेइमानी, विश्वासघात किसी भी दुष्कृत्य से वे बाज न आये। अवश्य उनमें एक-दो अच्छे भी हुए, मगर क्या लाभ? इन विधर्मियों के लालच की सीमा न रही। हिन्दू-मुसलमान नरेशों को आपस में लड़वाकर अपना अधिकार बढ़ाने की कला इन्हें खूब आती थी। आपसी मन-मुटाव व दुश्मनी के कारण बिल्कुल बिखरे पड़े हुए लोग बड़ी आसानी से उनकी राक्षसी भूख का शिकार होते गये।

काशी नरेश चेतसिंह सच्चा वीर और देशभक्त था। एक ओर अवध के नवाब, दूसरी ओर कम्पनी…इन दोनों को वह बेचारा कहाँ तक तृप्त करता? दोनों उसे गिराने की ताक में थे। अवध के नवाब की सहायता से ही वह गद्दी पर आसीन हुआ। लेकिन बक्सर के युद्ध के उपरान्त कम्पनी का हाथ ऊँचा होने से उसे कम्पनी की खुशामद करनी पड़ रही थी। वारेन हेस्टिंग्स हृदयहीन, मगर कुशल कूटनीतिज्ञ था। जब तक चेतसिंह उसके पक्ष में रहा, उसके काशी का नरेश

बने रहने में उसे कोई आपत्ति न रही, लेकिन अपना स्वार्थ पूरा होने पर वह चेतसिंह के निजी मामलों में दखल देने लगा। भारी-भारी रकमें माँगी और कई प्रकार के कष्ट दिये। यह एक बड़ी लम्बी राम-कहानी है।

वाजिदअली शाह का नाम सबने सुना होगा। वह ग्यारहवाँ नवाब था। दिल्ली में मुगलों के साम्राज्य के अस्त होते ही अवध की नवाबी का उदय हो गया। ये नवाब विलासमय जीवन बिताने में मुगलों से कम न थे। इसलिए बहुत शीघ्र ही इनका पतन हो गया। कहा करते थे कि वाजिदअली शतरंज के खेल में अपना होश और राज्य दोनों को गँवा बैठा। नवाब वजीर अली की भी यही दशा हुई। उसे सालाना पेंशन दी गयी। इसी पेंशन पर उसने एक दूसरी सेना रखी थी। काशी के लोगों को इसके प्रति सहानुभूति न थी। कम्पनी ने उसे काशी से कलकत्ता ले जाना चाहा, यह जानते ही नवाब तैश में आ गया। एक दिन बिल्कुल अप्रत्याशित रूप से पोलिटिकल एजेंट मि० चेरी और उनके सहायक मारे गये। उस रात की भयंकरता को मैं कभी भूल न पाती हूँ। नवाब के लिए कितने ही हिन्दू वीरों ने अपने प्राणों का बलिदान किया था। काशी हमेशा वीर पूजक है—आज भी इन वीरों पर लोकगीत गाये जाते हैं। आखिर जो होना था, वही हुआ। नवाब बन्दी बनाया गया। गलियों में जुलूस निकाला गया। ओह!

१८५७ ई० का विद्रोह! कितना स्पृहणीय था? उन दिनों का स्मरण करते ही रोमांच हो आता है। देश की हालत, जनता बहुत अतृप्त थी। कम्पनी के अन्यायों के विरुद्ध विद्रोह की आग सुलग रही थी। सिपाही इन विदेशियों के चंगुल से अपने को छुड़ाने के लिए छटपटा रहे थे। दिल्ली और मेरठ के विद्रोह की खबर पाते ही यहाँ के सिपाही भी उनके साथ मिल गये। आजमगढ़ से जो खजाना आ रहा था, वह लूटा गया। कर्नल नील फौजी टुकड़ी लेकर आ गया।

उस दिन की मुठभेड़ और हत्याकांड कितनी भयानक थी। अविमुक्त क्षेत्र, पुण्यस्थली, पापनाशिनी काशी नगरी में खुलेआम फाँसी के तख्ते खड़े किये गये। छोटे-मोटे अपराधों पर भी लोग फाँसी के तख्त पर लटकाये गये। सड़कों के किनारों पर, वृक्ष की शाखाओं पर लाशें झूलती रहीं। बरना संगम पर केशव का आलय है। उसे फौजी अड्डा बनाया गया। कम्पनी ने काशी की जनता से बुरी तरह बदला लिया। नील···सचमुच बड़ा हत्यारा था। काशी जैसे भक्तों को शरण देती है, वैसे विद्रोहियों को भी शरण देती आ रही है। अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र क्रांति करने वाले विद्रोहियों में से अनेक यहीं अज्ञातवास करते थे। यहाँ पर गुप्त रूप से वम बनाये गये और बराबर क्रांतिकारी कार्य होते रहे। चन्द्रशेखर आजाद, रास बिहारी बोस जैसे शहीद काशी की तंग गलियों और खण्डहरों में अपने को छिपा लेते थे।

यहाँ के तंग मुहल्ले, ठसाठस भरे हुए घर, सँकरी गलियाँ, आबादी इस नगरी को दुनिया में न्यारी नगरी बना रहे हैं। इसमें जादू-सा कोई आकर्षण है कि दर्शक अनायास इसकी ओर खिचे जाते हैं। काशी बिल्कुल गन्दी नगरी है। इसकी तंग गलियाँ, इधर-उधर बिखरे हुए कूड़े, स्वच्छन्द फिरते साँड़...नाकों दम करते हैं; ऐसा आम तौर पर लोग कहते हैं। पर मैं सच कहती हूँ, यह देखने लायक शहर है। सँकरी सड़कें, मेहराबदार दुकानें, दुमंजिले, तिमंजिले, असंख्य मंदिर, मठ-मठलाय, साधु-संन्यासी, भिखमंगे, विभिन्न धर्मावलम्बी व जाति के लोग यहाँ आने वाले यात्री के दिल में विविभ भावों को जगा देते हैं। हाँ! हर एक की अनुभूति अलग-अलग है। ऐसी कोई गली या चौकी न होगी जहाँ पर छोटा-सा मंदिर या मूर्ति प्रतिष्ठित न हो।

मंदिरों की इस नगरी में दो मीटर तक ऊँचे मंदिर हैं। इनमें कितने धराशायी हुए और फिर बनाये गये...यह कहना मुश्किल है। बाबा विश्वनाथ का आलय गोरी द्वारा गिराया गया था। फिर

पुराने मंदिर के स्थान पर नया खड़ा किया गया। औरंगजेब द्वारा यह तोड़ा गया तो १८७५ ई० तक व लगभग १५० साल तक यहाँ पर कोई मंदिर न बना। अहल्याबाई ने मंदिर का पुनर्निर्माण किया तो सिंधिया ने ज्ञानवापी मंडप बनवाया। महाराजा रणजीतसिंह ने मंदिर के गोपुर को सोने से मढ़वा दिया। घण्टा, नौबतखाना, चाँदी का मण्डप आदि बहुत कुछ चढ़ावा धनियों द्वारा मिलता रहा। स्थापत्य कला व शिल्प की दृष्टि से इस मन्दिर का कोई महत्व नहीं। इसकी बाहरी दीवार लाल पत्थर से बनी है। बिल्कुल छोटा-सा मंदिर है। तंग गलियों से होकर ही मन्दिर में जाना पड़ता है। मंदिर के चारों तरफ दुकानें हैं। भक्त मेरे जल में विश्वनाथ जी का अभिषेक कर अपने हाथ से फूल चढ़ाते हैं। अन्नपूर्णा का मन्दिर इसी के पास है। यही नहीं और भी कई देवी-देवताओं का आलय है।

मेरे तट पर नील दूकुल की जरीदार पाटा में सुन्दर घाट, सीढ़ियाँ व मन्दिर आकर्षक लगते हैं। ब्रह्मा घाट, दुर्गाघाट, दशाश्वमेघ घाट, मणिकर्णिका घाट, असी घाट, हनुमान घाट, शिवाला घाट, केदार घाट...आदि। सूर्योदय की वेला में इन घाटों का दृश्य बेहद मनोरम होता है। प्रातःस्मरणीय मधुर बेला में चलती ठण्डी हवा के झोंकों से हुलस नृत्य करती मंद-मंद लहरें और दोनों कूलों को छूता जल प्रवाह मुग्ध कर देता है। घाटों की उन्नत सीढ़ियाँ, मन्दिरों के कलश-कँगूरे, हवा में उड़ते झण्डे व झण्डियाँ, रंगीन छतरियाँ, यात्रियों की भीड़ अभिभूति करती हैं। प्रभात व संध्या की लाली व सुनहली आभा में तरंगायित मेरी जलराशि को देखने वाले इस नगरी की तंग गलियों में भिनभिनाने वाले पण्डे, ढेर-ढेर सी गंदगी, क्षणभर के लिए भूल जाती है। नौका विहार या दीपदान करते समय, शहर की गन्दी नालियों को मुझसे मिलते देख, हरिश्चन्द्र, मणिकर्णिका के श्मशान घाट से निकलती बदबू से, जब लोग नाक-भौंहें सिकोड़ने लगते हैं तो मुझे मन ही मन हँसी आ जाती है।

इस शहर की बनावट ही कुछ निराली है। एक ही समय पर व्यवस्थित रूप से इसका निर्माण न हुआ है। इसलिए आगे-पीछे मनमाने ढंग से मकान व इमारतें बनी हैं। सड़कें ऊपर, नीची व टेढ़ी-मेढ़ी हैं। कहीं-कहीं इतनी तंग गलियाँ हैं कि सूर्य की किरणें वहाँ तक पहुँच नहीं पातीं। आज की नयी पीढ़ी मन के मन में इस पुरातन नगरी को देखते वक्त जो-जो भावनाएं उठती हैं, वे मुझसे छिपी नहीं हैं। अस्वास्थ्यकर वातावरण, गन्दी नालियाँ, यात्रियों की भीड़, घूमती-फिरती गलियाँ इन सबको एक दम जड़ से उखाड़ कर फेंक दें और नया शहरी निर्माण क्यों न करें, ऐसा भी लोग कहा करते हैं।

लेकिन सच कहती हूँ। बाबा विश्वनाथ, देवी अन्नपूर्णा का दर्शन करने, मेरी धारा में डुबकी लगाने जो आते हैं, उनको बाह्य जीवन की यह गड़बड़ियाँ विचलित नहीं करतीं। उनकी एकमात्र कामना होती है ईश्वर का दर्शन और गंगा का स्नान। इन दोनों के लिए यहाँ पर कोई मनाही नहीं। जो चाहे भगवान को अपने हाथों से फूल चढ़ा सकता है। मेरे तट पर कषायधारी साधु-सन्यासी, पुरोहित, पण्डा, ज्ञानी, अज्ञानी सब रहेंगे। एक ओर कथा-पुराणों का प्रवचन तो दूसरी ओर जप-तप। कहीं क्रिया-कर्म होता और कहीं दान-पुण्य। राजनीति में निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। विचार, सिद्धान्त, सब कुछ बदलते रहते हैं। लेकिन धर्मोपदेशक इनसे बिल्कुल अप्रभावित हैं। वे उन दिनों से आज तक अपने सत्धर्म का सन्देश सुनाते रहते हैं।

सन्त कवि तुलसी ने अपने अमूल्य काव्य रामचरितमानस की रचना यहीं पर की थी। महाकवि सूरदास मेरे तट पर कृष्ण लीलाओं का मधुर गान किया करते थे। जन्म से हिन्दू और मुसलमानों की गोद में पले सन्त कबीर तो सर्वधर्म समन्वयवादी थे। जाति भेद को न मानकर, समस्त मानव जाति को वैष्णव धर्म की शीतल छाया में जिन्होंने आश्रय दिया, वह महान रामानन्द नित्य

मेरी धारा में स्नान करने आते थे। काशी भक्तों की भूमि है। बंग भूमि के चैतन्य जैसे कितने ही भक्त कवियों ने इस मिट्टी को पावन किया है। अज्ञान के अन्धकार मण्डित उस युग में ज्ञान का दीप जलाकर जिन्होंने भूली-भटकी जनता का मार्ग प्रशस्त किया, वे महात्मा युग-युग तक अमर रहेंगे। विदेश में जन्म लेकर, इस देश के धर्म, संस्कृति व शास्त्रों पर अटूट श्रद्धा व भक्ति रखकर जिस महिला के कण्ठ से यह आवाज निकली कि 'भारत मेरा देश है' उन्हीं ऐनी वेसेंट ने यहीं पर अपने ब्रह्मज्ञान सभा की सथापना की है।

यहाँ की एक और विशेषता है। भगवान बुद्ध के उपरान्त शंकराचार्य ने यहाँ आकर अद्वैत सिद्धातों के प्रचार से नवजागृति को फैलाया था। काशी के धार्मिक और सांस्कृति जीवन का एक अध्याय खुल गया। मूर्ति पूजा के विरोधी बौद्ध, अब बुद्ध की मूर्ति प्रतिष्ठित करके पूजा-पाठ करने लगे। बौद्ध, श्वेताम्बर, दिगम्बर, शाक्त, सिद्ध, कापालिक, जैसे कितने ही साधक यहाँ पर अपनी-अपनी साधना में लगे रहते थे। उन दिनों इतनी घनी आबादी कहाँ थी। एकान्त वास करने, तपस्या में लगे रहने वाले साधक लोग इसी पुण्य धाम में आ जाते थे। मेरे दोनों तटों पर घनी वनस्थलियों में पर्णशालाएँ, कुटियाँ, आश्रम, बौद्ध विहार और मठालय थे।

सारनाथ···काशी से कुछ किलोमीटर की दूरी पर है। यहाँ का वातावरण शान्त और सुन्दर है। बुद्ध ने अपने धर्मोपदेश के लिए इसी स्थान को चुन लिया था। यहीं से उनका सन्देश पहले पहल संसार को मिला था। बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित कई चिह्न यहाँ पर हैं। अशोक ने अपने शासन काल में इसकी खूब उन्नति की थी। आज कई नए मन्दिर व संग्रहालय पर्यटकों को अपनी ओर खींचते रहते हैं। पुराने विहारों और संघग्राम को आप देख न पाएँगे। उलटे

हरी-भरी फुलवारी और सघन कुंजों में चौकड़ी भरते हिरणों के झुंडों को देखकर आनन्दित हो सकते हैं।

बस—काशी की कहानी काफी लम्बी हो गयी है।

ताँतेपुर के निकट मेरी धारा दूसरी तरफ मुड़ जाती है। यहाँ की भूमि नीची ही नहीं, रेतीली भी है। ''कैथी'' में फिर से उत्तर की तरफ मुड़ती मैं ''वलूआ'' तक उसी दिशा में सीधी बहती हूँ। यहाँ से उत्तर-पश्चिम की तरफ घूमकर थोड़ी दूर के बाद उत्तर व उत्तर-पूरबी दिशा में प्रवाहित होती हूँ।

आगे 'तारपुर', 'सैदपुर', 'चोचकपुर', पहाड़पुर', 'कारननाता', 'जमनिया', मैनपुर' आदि को पार करके गाजीपुर में पहुँचती हूँ। १०२ किलोमीटर तक बहने के उपरान्त 'गंगी' मुझसे आ मिलती है। 'कारननाता' को मैं तीनों ओर से घेर लेती हूँ। मेरे बहाव और मार्ग का कोई निश्चय नहीं। एकाएक किसी कस्बे से दूर हट जाती, कभी कई कस्बों को बहा ले जाती हूं। कहीं पर मेरी गति तेज है, कहीं मन्द। मेरे दाएँ किनारे पर गाजीपुर है। 'तारा' से लेकर मेरी चौड़ाई कम होने लगती है। 'चौसा' तक मैं पूरबमुखी हूँ। यहीं पर 'कर्मनाशा' मुझमें मिलती है। यह कैमूर पहाड़ियों से निकलकर, मिर्जापुर जिले से होती हुई, वनारस जिले में फतहपुर गाँव में प्रवेश करती है। फिर गाजीपुर की सीमा बनती हुई नखन तालुका को, शाहाबाद से अलग कर देती है। फतेहपुर से अड़तीस किलोमीटर पर, 'चौसा' में मुझसे मिलती है। 'गहई' और 'चन्द्रप्रभा' इसकी मुख्य उपनदियाँ हैं। लोगों में यह विश्वास है कि इसका पानी छूने से पुण्य नष्ट हो जाएगा इसलिए इसे 'अभिशप्त नदी' कहा करते हैं।

बक्सर के निकट मैं विहार राज्य में प्रवेश करती हूँ। बक्सर मेरे दाएँ किनारे पर है। 'आरा' से यह ६९ किलोमीटर पर है। इसका प्राचीन नाम 'वेदगर्भा' है। यह ऐतिहासिक महत्ता रखता है न?

बक्सर के युद्ध की सफलता ने ही कम्पनी के शासन की जड़ें जमा दी थी। किले, परकोटे के खण्डहरों को आज भी देखा जा सकता है।

6

बिहार···बिहार का नाम कैसे पड़ा, इस सम्बन्ध में अनेक रोचक कथाएँ हैं। कहा जाता है कि यहाँ बौद्ध विहार इतने अधिक थे कि इस प्रदेश का नाम ही 'विहार' हो गया, जो बाद में 'बिहार' में बदल गया। एक और किंवदंती है। रेगिस्तानों से ऊँटों पर चढ़े लुटेरों के जब झुंड के झुंड मेरे इस क्षेत्र में उपजाऊ हरियाली में पहुँचे तो आनन्द के मारे चिल्ला उठे, 'बहार है बहार !' यही 'बहार' का नाम बाद में 'बिहार' हो गया।

आर्यावर्त्त के इस प्रदेश में बड़े-बड़े साम्राज्य उठ खड़े हुए थे। बिम्बसार, अजातशत्रु, चन्द्रगुप्त, अशोक, हर्ष—जैसे महान सम्राटों ने यहाँ पर शासन किया। जीवन की महोन्नति और घोर अधःपतन दोनों को इस धरती ने देखा है। मगध, कौशल, लिच्छवी, मिथिला जैसे जनपद राज्यों ने अपने कीर्ति-किरणों से इस प्रदेश को उद्भासित

किया है। बुद्ध, महावीर जैसे महात्माओं की यह जन्मभूमि है। घाघरा, सोन, गंडकी, कोसी—जैसी नदियाँ यहाँ पर अपनी अमृतधारा बहा रही हैं। मेरे मध्यवर्ती मैदान में उत्तर प्रदेश के एक तिहाई पूरबी भाग और बिहार का आधा उत्तरी भाग आता है। इस सारे प्रदेश की लम्बाई ६४० किलोमीटर है। यह मैदानी प्रदश मेरे और मेरी उपनदियों द्वारा लायी हुई मिट्टी से बना है। बाढ़ की मिट्टी जमती जाती है न? इसलिए नदियों में तलहटियाँ ऊँची होता रहती हैं जिसके फलस्वरूप बाढ़ का पानी किनारों से होकर बहने लग जाता है।

प्राकृतिक दृष्टि से इस राज्य को दो भागों में बाँटा जा सकता है—उत्तर का मैदानी प्रदेश और दक्षिण का पठारी भाग। इस राज्य के उत्तर में नेपाल, दक्षिण में उड़ीसा, पश्चिम में पश्चिमी बंगाल, पूरब में उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश आदि हैं। इसका क्षेत्रफल २,२७,४७८ वर्ग किलोमीटर है। इसकी उत्तरी सीमा के रूप में मेरे अलावा 'सोन' बहती है। घाघरा, गंडकी, कोसी, कमला, बागमती, बूढ़ी गंडकी, बालान, करेहन आदि छोटी-बड़ी नदियाँ इस राज्य में मेरी सहायक नदियाँ हैं। इनके अलावा दक्षिण की तरफ से आकर कर्मनाशा, सोन, पुनपुन, फलगू आदि भी मुझे अपना पानी देती हैं। ये सब छोटा नागपुर की पठार व कैमूर की पहाड़ियों से आती हैं। समतल मैदानी प्रदेश होने पर भी यह क्षेत्र दक्षिण की तरफ ढालुआँ है। मेरे उत्तर की तरफ के भूभाग को उत्तरी बिहार कहते हैं। उत्तर पूरबी, उत्तर पश्चिमी दिशा पर स्थित पहाड़ों के बीच का यह प्रदेश उर्वरा ही नहीं, सुरम्य हरियाली से युक्त है। दोनों सीमाओं पर घने जंगल, घास-फूसों की झुरमुटें, मुजफ्फरपुर इसके अन्तर्गत हैं। पूरबी तरफ भागलपुर है। दक्षिणी बिहार में मैं दक्षिणमुखी हूँ। इसका अधिकांश भाग पथरीला व पहाड़ी है। पहाड़ियाँ बहुत ऊँची नहीं हैं। नदियों के

कटाव ने अनेक सँकरी घाटियाँ बना दी हैं। मयूराक्षी, दामोदर, स्वर्ण रेखा आदि नदियाँ समतल पठारी भाग में बहती हैं।

इस राज्य में १५ जिले हैं। ये हैं—भागलपुर, चंपारन, दरभंगा, गया, हजारीबाग, मुंगेर, मुजफ्फरपुर, पालामऊ, पटना, पूर्णिया, राँची, संथाल परगना, सराय, शाहाबाद और सिंहभूम। यहाँ की जलवायु मानसूनी है। दक्षिण बिहार में गर्मी और ठंड दोनों अधिक हैं। तराई क्षेत्र में वर्षा अधिक होती है।

हाँ, एक बात कहना भूल गयी—बिहार वन-सम्पत्ति की दृष्टि से धन्य है। ३१,३७५ वर्ग किलोमीटर वनों से भरा है। सालवान लकड़ी विशेष रूप से पायी जाती है। कृषि ही यहाँ का मुख्य धन्धा है। ५२ प्रतिशत से अधिक भूमि पर कृषि होती है। मुख्य उपज चावल है। गेहूँ, मक्का, जौ, तिलहन, तम्बाकू आदि की भी उपज होती है। उत्तरी हिस्से में जूट की खेती खूब होती है। चम्पारन, सारन, दरभंगा, मुजफ्फरपुर में गन्ने का उत्पादन अधिक है।

यहाँ पर सिंचाई की योजनाओं का खूब विकास हुआ है। सोन की तीन नहरों, आरा नहर, बक्सर नहर के साथ-साथ गंडकी का त्रिवेणी नहर आदि से सिंचाई की जाती है। शाहाबाद जिले में नलकूप द्वारा सिंचन होता है। दामोदर घाटी योजना के अलावा और भी कई छोटी-छोटी योजनाएँ पूरी हुई हैं।

खनिज सम्पत्ति की दृष्टि से यह राज्य महत्त्वपूर्ण है। लोहा, ताँबा, कोयला, अभ्रक, मैगनीशियम आदि प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। इस राज्य में खानों की कमी नहीं। बिजली का उत्पादन भी खूब होता है। मूल धातुओं और शक्ति-साधनों से युक्त होने के कारण उद्योग-धन्धों की उन्नति काफी हुई है। लौह उद्योग, सीमेंट उत्पादन, चीनी, तम्बाकू, रासायनिक खाद जैसे उद्योग खूब चलते हैं। छोटा नागपुर और संथाल परगना में आदिवासी अधिक रहते हैं। ये लाख

उत्पादन, लाख संग्रह, रेशम उत्पादन आदि धन्धों में लगे हैं। देश के कुल लाख का ६० प्रतिशत यहीं मिलता है।

छोटानागपुर की जलवायु सुखकर है। इधर-उधर बिखरी हुई शैलमालाएँ, घनी अमराइयाँ, शीतल छायादार वृक्ष, नीले आकाश की पृष्ठभूमि पर कुशल चित्रकार की तूलिका से अंकित मनमोहक रंगीन चित्र-से लगते हैं। यहाँ पर पलाश वृक्ष बहुतायत में मिलते हैं। इन्हें "जंगली आग" भी कहा जाता है। ग्रीष्म के आरम्भ में ये वृक्ष एकाएक फूलों से ढँक जाते हैं। उन लाल-लाल फूलों की रक्तिम शोभा इतनी निराली होती है कि दर्शक मुग्ध हो उठते हैं।

शाहाबाद की उत्तरी सीमा पर मैं बहती हूँ। गाजीपुर, बलिया, सारन जिलों को मेरी धारा अलग कर देती है। कर्मनाशा के संगम के उपरान्त उत्तर-पूरब की तरफ बक्सर की तरफ बढ़ती मैं बलिया पहुँचती हुई दक्षिण-पूरब की तरफ मुड़ जाती हूँ। समाहि के निकट फिर से उत्तर पूरब की तरफ घूमकर हल्दी के सामने पूरबमुखी बन जाती हूँ। यहीं पर सोना से मेरी भेंट होती है। इसे सोन भी कहते हैं। हमारा संगम-स्थान निश्चित नहीं है। यह जानकर शायद आश्चर्य हो कि मैं कभी-कभी अपनी राह बदल लेती हूँ। तब मेरी धारा बँट जाती है—अनेक टापू निकल आते हैं और फिर एकाएक विलीन हो जाते हैं। आजकल मैं पूर्व के संगम से बहुत दूर हट गई हूँ।

मेरी भगिनी सोन को देखिए। कितनी तेजी से भागती आ रही है। मेरी बहनों में अपनी बड़ी दीदी का जरा भी ख्याल न करने वाली उद्दण्ड व हठी बहन एकमात्र यही है। अट्टहास करती हुई आती सोन में कितना आवेग है? आप हैरान हो जायेंगे। सच कहती हूँ। किनारों के बन्धन को तोड़-फोड़कर बहने में इसे निराला आनन्द मिलता है। कभी-कभी इसका आसुरी प्रवाह मेरे किनारों का भी मर्दन कर देता है। बिहार की सीमा रेखा बनी सोन इस राज्य में ७७६

किलोमीर तक बहती है। सोन ही शाहाबाद को बिहार से अलग करती है। पूरब की तरफ से वह आती सोन मिर्जापुर के उत्तर-पश्चिम कोने पर स्थित पालामऊ के निकट मुड़कर कैमूर पहाड़ियों की तरफ चलती है। इस पहाड़ी प्रदेश के टीलों और खड्डों में उछल-कूद भरती है यह। खासकर कैमूर पहाड़ियों से गुजरते समय इसके आह्लाद का क्या कहना ! असंयत अपार वेग से उमड़ती है यह। "कोली" नामक एक छोटी नदी इसे अपना सारा पानी दे देती है तो बड़ी कुतूहल से पहाड़ रास्ते पर हिलोरें भरने लगती हैं। इसकी गहराई और चौड़ाई की थाह लेना भी मुश्किल है। मेरी सोन बड़ी सुन्दर है। पहाड़ों और घाटियों में इसकी शोभा देखने वाले इसके सौंदर्य पर अपना दिल लुटा लेत हैं। कहीं-कहीं यह बिल्कुल शांत व गम्भीर दीखती है, लेकिन वर्षा काल में इसका रूप देखने लायक होता है। तब यह मुक्त-कुन्तला, कराल कालिका बन जाती है। आसुरी वेग और भँवरों से भरी इसकी धारा खतरनाक बन जाती है। मन्द-मन्द चलती हवा को प्रचण्ड तूफान बनते देखा है ? सोन का परिवर्तन वैसा ही दिल दहलाने वाला बन जाता है। इस गर्जन, को सुनने वाले थर्रा उठते हैं। रीवाँ जिले में अमरकंटक इसका उद्गम स्थान है। कई एक नदी-नाले इसे पानी देते हैं। डेहरी के ऊपर गया के मार्ग में इस पर एक बहुत बड़ा पुल बना है। सोन से कई नहरें निकली हैं। डेहरी से बक्सर तक, डेहरी से आरा तक, डेहरी से पटना तक कई नहरें चलती हैं। शाहाबाद, पटना और गया जिले इसके द्वारा सिंचित होते हैं।

सोन का नाम कैसे पड़ा ? यह उत्सुकता सहज ही होती होगी। कारण मैं बताऊँ। इसकी तलहटी की रेती सोने-सी चमकती है। इसीलिए इसको सोन कहते हैं। इसे "शोण मेहा" भी कहते हैं। मगध देश से गुजरने से मागधी भी कहते हैं। प्राचीन समय में इसके तट पर गिरिव्रज नामक प्रसिद्ध राज्य था। चारों तरफ छोटे-मोटे पहाड़ों से घिरे रहने से उस राज्य को गिरिव्रज कहा करते थे। सोन इन पाँचों

पहाड़ों के गले में लिपटी हुई माला-सी पड़ी रहती है। आजकल दीना-पुर से १६ किलोमीटर पर यह मुझमें मिलती है। सोन एक सुन्दर जल-मार्ग भी है। तटीय व्यापार, नावों, जहाजों, स्टीमलांचों द्वारा होता है। बिहार राज्य में इसकी लम्बाई २६९ किलोमीटर है। लेकिन इसकी कुल लम्बाई ७७० किलोमीटर है।

आगे मेरी नेपाली बहनें प्रतीक्षा में खड़ी रहती हैं।

छपरा के पास मुझमें घाघरा आ मिलती है। मेरी उपनदियों में यह मुख्य है। तिब्बत से निकलकर नेपाल में प्रवाहित होने वाली यह नदी भारत में आकर मुझसे मिलती है। कई पहाड़ी नदियाँ अपनी अमित जलराशि से इसे सम्पन्न बनाती हैं। उत्तर प्रदेश में सरयू इससे मिलती है। सरयू इतिहास प्रसिद्ध नदी है। इसने कोशल नरेश को सम्पन्न रखा था। इसी के तट पर अयोध्या नगरी थी। श्रीराम की जन्मभूमि अयोध्या के नाम पर एक छोटे से कस्बे को आप आज पा सकते हैं। सरयू की नीली धारा एवं अयोध्या की शोभा का कवियों ने कितने सुन्दर ढंग से चित्रण किया था।

'शारदा' घाघरा की एक और उपनदी है। गर्मी के घोर ताप में इस तल का जल नहीं सूखता। यह भी अच्छा जलमार्ग है। इसके द्वारा वाणिज्य ख़ूब होता है। धवलागिरि के दक्षिण से उत्पन्न होनेवाली 'राप्ती नदी' नेपाल में ११२ किलोमीटर बहने के बाद बहराइच जिले में उत्तर प्रदेश के अन्दर आती है। गोंडा जिले से होकर बस्ती जिले में आती 'राप्ती' कई झीलों, तालाबों और कुण्डों को पानी देकर सिंचाई में मदद करती है। यहाँ से घाघरा की तरफ आते मार्ग मार्ग में, इसके किनारे पर गोरखपूर है। बस्ती से यह चौंसठ किलोमीटर पर है। यहाँ से मेरे संगम तक स्टीमलांच, छोटे जहाज भी चलते हैं। सततवाहिनी और तेज धारा होने के कारण यह जलमार्ग तटीय व्यापार और यातायात के लिए सुगम है। बिहार में पटना से लालगोला, पटना से बक्सर तक मेरी धारा में स्टीमर चलते हैं। वैसे घाघरा और मेरे

संगम से वरहज तक जलमार्ग, व्यवस्थित और नौकागमन के लायक है। राप्ती इसी जिले में वरहज के निकट घाघरा से मिल जाती है।

आगे गंडकी तैयार खड़ी है। जहाँ पर यह मुझसे मिलती है, वहाँ 'सोनपुर' है। चंपारन जिले में त्रिवेणी नामक स्थान पर यह मैदान में उतर आती है। उपजाऊ डेल्टा प्रदेश को रूप देनेवाली गंडकी चारण जिले की समृद्धि व सम्पन्नता का कारण बनती है। गंडकी भी बड़ी वेगवती है। इसकी धारा के विपरीत दिशा में नावें चलाना असाध्य है। पटना के उस तरफ के किनारे पर इससे मेरा संगम होता है। इसके तट पर कई बौद्ध धर्म क्षेत्र हैं। इसके 'नारायणी', सदानीरा, चकरा आदि नाम भी हैं। यह भी अक्सर अपना मार्ग बदल लेती है। इसलिए ये बौद्ध तीर्थ-स्थलियों, हरिद्वार व काशी जैसी यशस्वी नहीं वन पायीं। तमसा और पंचनद इसे अपना पानी देती हैं। इसके किनारों पर घने जंगल हैं।

दक्षिण से आती सोन जैसी एक और नदी मुझसे आ मिलती है। इसका नाम है - पुनपुन। गया जिले के दक्षिणी छोर से आती यह 'बद्वा' के निकट मुझमें मिलती है। पुनपुन का नाम लेते ही मुझे गया की याद आती है। पुनपुन बड़ी नदी न होने पर भी सिंचन कार्य के लिए बड़ी उपयोगी है। गया में इस पर बड़ा पुल बना है।

गया हजारों सालों से हिंदुओं के लिए पुण्य क्षेत्र बना हुआ है। दक्षिणी दिशा से आकर मिलने वाली मेरी उपनदियों में 'फलगु' भी एक है। गया क्षेत्र इसके तट पर स्थित है। 'फलगु' उतरवाहिनी है अर्थात् दक्षिण से उत्तर की ओर आती है। यह एक विशेष बात है। फलगु के चारों तरफ घने जंगल व वनप्रदेश हैं। 'फलगु' का सौंदर्य वर्षा काल में दुगुना हो जाता है। ग्रीष्म के ताप में यह बिल्कुल उथली धारा नजर आती है। घनी झाड़ियों, छायादार वृक्ष और हरे-भरे अरण्य प्रदेशों से होकर यह प्रवाहित होती है। बुद्ध गया, 'गया'

दोनों में यात्री आते रहते हैं। 'फलगु' सीधे मुझसे न मिलकर पुन-पुन में एकाकार हो जाती है।

'गया' धार्मिक मुख्यत्व रखता है। यह कलकत्ता से २०७ किलोमीटर और काशी से २०३ किलोमीटर की दूरी पर है। पितृकर्म करने, श्राद्ध, पिंडदान करने, भारत के कोने-कोने से लोग यात्रा की कठिनाइयों की परवाह किये बिना आते हैं। यहाँ पर पिंडदान करने से पितृगण की आत्मा को शांति मिलती है। यह प्राचीन विश्वास है। यहाँ पर दिया दान महत्वपूर्ण है तथा 'विष्णुपाद', 'अक्षयवट' का दर्शन पुनीत कहा जाता है। यहाँ कई मंदिर हैं।

पटना के समीप आते-आते 'पाटली' की मानक स्मृतियाँ मुझे अधीर बना देती हैं। युवानस्वांग ने जिस नगरी की शोभा व वैभव पर प्रसन्न हो उठा, वह 'पाटलिपुत्र' मगध राज्य की राजधानी 'राजगीर' मेरे आँखों में तैर उठता है। 'राजगीर' पटना से ८० किलोमीटर की दूरी पर है। कभी यह मगध की राजधानी थी। अब इसका यश दूर-दूर देशों में फैला है। इस प्रागैतिहासिक नगर का महाभारत में 'ब्रह-दत्तपुर' और रामायण में 'वसुमति' के नाम से उल्लेख आता है। समस्त वैभवों से युक्त यह वर नगरी आज बिल्कुल महत्वहीन है। इस छोटे से गाँव को देखने आज भी यात्रीगण आते रहते हैं—खासकर पुरातत्व विभाग वाले इसकी ओर आकर्षित हैं। खुदाई का काम चलता रहता है। यहाँ से हवा शुष्क और गरम होने पर भी यहाँ की मिट्टी बड़ी उपजाऊ है। हर कहीं हरियाली बिछी रहती है। गरम पानी के अनेक सोते हैं। लोगों का विश्वास है कि इनमें नहाने से त्वचा संबंधी रोग दूर हो जाते हैं। यहाँ पर लोग स्नान करने के लिए आते ही रहते हैं। राजगीरों, पर्यटकों, छात्रों, उल्लसित यात्रियों, पुरातत्व अन्वेषकों आदि का ध्यान अपनी ओर खींचता रहता है। महान साम्राज्य के सुख-भोग युक्त जीवन, राजमहल व रनिवासों के कोला-

हलमय आनंद को मैंने देखा है। आज इस श्रीहीन भग्नावशेषों में बिसूरते गाँव, टीलों, खंडहरों और जंगलों में उल्लसित यात्रियों की चहल-पहल सुनकर अपना दिल बहलाती हूँ।

विशाल बालूकामय मैदान में जगह-जगह पर रंगीन डेरे लगाये जाते हैं। इस निर्जन वन-प्रदेश में एकाएक जीवन स्पंदित हो उठता है। सारा परिवेश बड़ा ही मधुर और रमणीय बन जाता है। चाँदनी रात की नीरव निस्तब्धता में, अतीत की स्मृतियों की याद दिलाते ये खंडहर और टूटे-फूटे महलों को देखते समय एक विचित्र अनुभूति घेर लेती है, मानो ये अपने अतीत वैभव की हजारों कहानियाँ कानों-कान कहने के लिए व्यग्र हो रहे हों। वसंत ऋतु में यहाँ की सौन्दर्य सुषमा अलौकिक हो जाती है। सारी वनस्थली में फूलों की बहार अपनी रंगीनता की छटा बिखेर देती है। प्रकृति की अकृत्रिम शोभा मन मोह लेती है। रंगीन फूलों का मादक गंध वायु के 'गंध वट्ट' नाम को सार्थक करता हुआ सारे परिवेश को अपनी तीव्र सुगंध से सुगंधित करता रहेगा। मलयानिल के उन झोंकों में, झरने कलगान करते, लहरें तट पर ताल देतीं, पक्षीगणों की चहचहाहट, मृदंग पर थाप देती रंग-विरंगी तितलियाँ नाच उठती हैं। सच कहती हूँ—आप मंत्रमुग्ध हो जाएँगे।

राजगीर का परिवेश काव्यात्मक है। 'गिरिव्रज' नामक इस शहर का निर्माण जरासंध ने किया था। बाद में शिशुनाग वंश के राजा बिम्बसार ने अपनी राजधानी को उत्तर की तरफ बदल लिया। यही 'राजगीर' है। इसके चारों तरफ 'वैभारगिरि', 'विपुलगिरि', 'रत्नगिरि', 'चंद्रगिरि', 'उदयगिरि', 'स्वर्णागिरि' आदि सात पहाड़ियाँ हैं। कभी ये पहाड़ियाँ इस राजधानी की प्राकृतिक सीमाएँ थीं। बिंबसार ने इस नगरी का खूब विकास किया। किले, परकोटे, राजमहल, रनिवास, विहार, मठालय और मन्दिरों ने इस नगरी की

शोभा बढ़ायी । चारों तरफ पहाड़ियों से घिरे रहने के कारण राजा ने दक्षिण और उत्तर के फाटकों पर अपनी सेनाएँ रखी थी ।

शिशुनाग वंश में राजा बिंबसार और उसके पुत्र महाराजा अजातशत्रु का नाम प्रसिद्ध है । शिशुनागों ने ही मगध साम्राज्य का निर्माण किया था । ये बड़े वीर, प्रतापी और तेजस्वी पुरुष थे । इस वंश में बिंबसार पाँचवाँ नरेश था । इतिहास इसको भूल न पाता है । वह बड़ा बुद्धिमान, कला-रसिक, वीर-योद्धा और भावुक हृदय का था। भगवान बुद्ध के प्रति उसे बड़ी श्रद्धा थी । उसने कोशल और लिच्छवि से वैवाहिक सम्बन्ध कर लिया था । इस राजगीर को अपनी राज-धानी बनाकर, ४३२० वर्ग किलोमीटर विस्तार के साम्राज्य का निर्वाह बड़े व्यवस्थित ढंग से कर रहा था । इसका न्याय निर्मम नहीं रहा । प्रजा के प्रति बड़ी दया व प्रेम रखता था जिससे इसके राज्यकाल में जनता सुखी थी । बौद्ध धर्म के प्रचार में इसने खूब योग दिया । भिक्षुओं की सुविधाओं का ख्याल रखा । विहार और मठालय बनवाये । अन्य धर्मों के प्रति भी कट्टरता न दिखायी ।

लेकिन इतने सुख-भोगों के बीच में भी वह अशांत था । उसके मन को कभी शांति न मिली । राजाधिराज होते हुए भी मन में वह अकेला था । भगवान तथागत के उपदेश और करुणापूरित दृष्टि में उसका आकुल चित्त थोड़ा-सा आश्वासन पा लेता था । अपने बेटे अजातशत्रु के विद्रोह और निर्ममतापूर्ण व्यवहारों ने उसे निराश कर दिया । अजातशत्रु ने बिंबसार को कारागृह में डाल दिया था । उस महान मगध सम्राट ने नितांत अकेलेपन में, अपनी आखिरी सांस तक अंतहीन निराशा में अपने दिन बिताये थे । 'कोशल', 'अवंति', 'वत्स' आदि राज्यों से बिंबसार मित्र भाव रखता था। कोशल में इक्ष्वाकु वंश का राजा प्रसेनजित राज्य कर रहा था। कोशल की राजकुमारी ही बिंबसार की पट्टरानी थी। प्रसेनजित भगवान तथा-गत का शिष्य था। अवन्ति राजा महासेन से बिंबसार की बड़ी

मित्रता थी। अवंति राजा बड़ा पराक्रमी, वीर योद्धा था। वत्स राज्य के राजा उदयण को बिंबसार ने अपना दामाद बना लिया था। इस तरह आसपास के राज्य परस्पर स्नेह व बन्धुत्व में जुड़े हुए थे। साम्राज्यवाद के उन दिनों में कई गणतंत्र राज्य सर्वोन्नत दशा में रहे। राजतंत्र में लोकतंत्र इस देश के लिए नया नहीं। लिच्छवी, वज्जी, वैशाली गणराज्य के नाम आज भी अमर हैं।

अजातशत्रु अपने नाम के अनुरूप अजेय था। बड़ा तेजस्वी वीर था वह। राज्य को अपने हाथ में लेकर, सिंहासन पर बैठने के लिए वह व्याकुल था। हाँ, शिशुनाग वंश की कीर्ति को अपनी अजेय वीरता से उसने उज्ज्वल किया; इसमें कोई सन्देह नहीं। लिच्छवी गणतन्त्र को परास्त करने का श्रेय इसी को मिला है। इस गणतंत्र पर विश्वास नहीं रहा। कोशल को जीतकर अपनी अधीनता में करने की इसने बड़ी कोशिश की और एक हद तक सफल भी हुआ। एक महान साम्राज्य को खड़ा करने की महत्त्वाकांक्षा से प्रेरित अजात ने, वज्जियों और मल्लों की अदम्य शक्ति को परास्त कर दिया। यह तो शुरू में बौद्ध धर्म का विरोधी था। लेकिन अन्त में बौद्ध धर्मावलम्बी बन गया। तथागत के निर्वाण के उपरांत राजगीर के सप्तपर्ण गुफा में 'बौद्ध महा संघ' का इसने आयोजन किया और धर्म के प्रचार के लिए राज्य की तरफ से सहायता करता रहा। . . . . .

राजगीर के लिए पहाड़ियाँ प्राकृतिक सुरक्षा की सीमाएँ बनी थीं—एक तरह से यह अच्छा रहा; लेकिन पहाड़ियों से घिरी हुई राजधानी को केन्द्र बनाकर विशाल साम्राज्य के शासन की बागडोर को सँभालना कठिन था। सेनाओं का आवागमन दुस्साध्य था। इसलिए अजातशत्रु ने 'सोन' और मेरे संगम स्थान पर एक मजबूत किले का निर्माण किया। . . . .

अजातशत्रु; जिसने पिता को कारागृह में डाल दिया था; ने खुद

पिता बनने के उपरान्त ही पितृवात्सल्य की वात्सल्य को महसूस किया और अपनी गलती पर बहुत पछताया।

'पाटलिपुत्र' के जन्म की कथा बड़ी रोचक है—

चाँदनी रात थी। दुग्ध फेन-सी शीतल किरणें सर्वत्र छायी हुई थीं। अजातशत्रु खुली छत पर बैठे चाँदनी रात के विशुद्ध सौन्दर्य का रस ले रहे थे। साथ में राजकुमार उदायी और मन्त्री प्रधानी भी थे। मधुरिमापूर्ण इस मादक रात का रस कैसे लिया जाए, इस पर सब अपने-अपने विचार प्रकट कर रहे थे। लेकिन उदायी के विचार उन लोगों से बिल्कुल भिन्न थे। उसने कहा, 'इस मीठी रात की सुखद स्मृति लिए सेना, साम्राज्य विस्तार के लिए कूच करे तो कितना अच्छा रहेगा।'......बेटे की शौर्यतापूर्ण बातों पर अजातशत्रु प्रसन्न हुआ। एक महत्त्वपूर्ण साम्राज्य का निर्माण करने, और युद्धा में अजेय रहने की महत्वाकांक्षा, आखिर सफल हुई...... 'पाटलो' का निर्माण हुआ। वही उसकी नई राजधानी बनी, और यहीं से १६ साल तक उसने शासन किया।

'सोन' और मेरे संगम पर 'पाटली' है। एक प्रशान्त गाँव है यह। यहाँ पर पाटली पुष्प खूब मिलते हैं। लाल-लाल रंग के इन फूलों का सौन्दर्य निराला होता है। चित्त को मोहित करने वाले अरुण रंग के इन फूलों से भरा यह स्थान, यहाँ की प्राकृतिक शोभा ने अजातशत्रु को मोह लिया। 'पाटल' फूलों की बहुलता के कारण इस गाँव का नाम 'पाटलीपुत्र' बना। इसके एक तरफ 'सोन' मन्द-मन्द मुस्कराती हुई मस्त गति से आती है और दूसरी तरफ द्रुतगामिनी बनी मैं, उसे अपने कूलों में भर लेती हूँ।

उन दिनों 'पाटली' सामरिक महत्व रखता था। मेरे दायें किनारे पर 'वज्जि' गणतन्त्र था। 'वज्जि' गणतन्त्र को विजित कर उसे अपने साम्राज्य में मिलाने की चिराकांक्षा को पूरा करने के लिए अजात

ने यहाँ पर सुदृढ़ किला खड़ा किया। हाँ, उसका सपना सत्य हुआ। ...हिमालय की तराई तक मगध साम्राज्य का विस्तार हुआ।... पाटलिपुत्र नगर का निर्माण हो रहा था...तब की बात है। तोरण द्वार पर बन रहा था। संयोग से भगवान बुद्ध उस तरफ से निकले। नालन्दा से वे वैशाली जा रहे थे। मन्त्रि-प्रधानियों ने तथागत का स्वागत-सत्कार किया। उस दिन तथागत के मुँह से जो शब्द निकले, वे आज भी मेरे कानों में गूंज रहे हैं। उन्होंने कहा था, 'यहाँ पर जो नगरी आबाद होगी, उसका भविष्य महत्त्वपूर्ण है। इसका यश दूर-दूर तक फैलेगा। कला, साहित्य, राजनीति, वाणिज्य सब तरह की उन्नति होगी। लेकिन इसका अन्त दुखदायक रहेगा—आग, बाढ़, और लूटपाट का शिकार होकर इसका करुण अन्त होगा।'

कालान्तर में तथागत की यह वाणी सत्य हुई। वरनगरी पाटली कहीं की न रही।

उदायी मित्र के शासनकाल में यह उसकी राजधानी थी। नगर के दोनों तरह सुगम जलमार्ग होने से, राजगीर से बढ़कर यातायात व वाणिज्य की सुविधा रही। इसके अलावा यहाँ रहते हुए शासन भार का निर्वाह करना सुलभ था। जलमार्ग द्वारा चारों तरफ की खबरें यथाशीघ्र मिल जाती थीं। हम दोनों नदियों पर उन दिनों जलपोत और जलयान चलते थे। कलकल करती हमारी धारा पर जलपोतों का आना-जाना, हमारे तटों पर सैनिकों के पड़ाव, नगर का कोलाहल, कितना मनोरम लगता था? पाटली किला, दुर्ग, चहारदीवारियाँ बड़ी मजबूत थीं। ऊँचे, गम्भीर तोरण द्वार, विशाल द्वार जगह-जगह पर उन्नत गोपुर, गहरी खाइयाँ सामरिक महत्त्व रखती थीं। इस प्रमुख नगर व राजधानी के ६४ प्रधान द्वार थे। उदायी ने यहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य मात्र से अभिभूत होकर इस नगर का निर्माण न किया, राज्य के निर्वाह व राजनैतिक दृष्टि से इसको राजधानी बना दिया था।

उदायी मित्र की कीर्ति, उसके राज्य की समृद्धि व उसके पराक्रम ने अगल-बगल के राजाओं की ईर्ष्याग्नि में घी का काम किया। उदायी जैन धर्मावलम्बी जैन साधु महल में आया-जाया करते थे। जैनियों के लिए कोई मनाही न थी। मौका पाकर उसके बैरियों में एक राजकुमार ने जैन साधु के वेष में आकर उदायी को मार डाला। मैं अक्सर सोचा करती थी कि अगर उदायी जीवित रहता तो और भी कितने महत्त्वपूर्ण कार्य करता। इतिहास कुछ और बनता। लेकिन वह केवल सोलह साल तक ही राज्य कर पाया।

बाद में नंद वंश का आविर्भाव हुआ। ये भी बड़े शक्तिशाली राजा थे। पूर्वी समुद्र से लेकर, यमुना तक इनका राज्य फैला था। लगभग ८० सालों तक इनका शासन रहा। इस वंश का अन्तिम राजा नन्द था। यह ब्राह्मणों का विरोधी था। ब्राह्मण धर्म का मूलोच्छेद करना अपने जीवन का चिरंतन लक्ष्य मानने वाला यह राजा धनलोलुप था। उसने मेरे तट पर तहखाने बनवाकर अमित धनराशि जमा कर रखी थी। इसके राज्य-काल में केवल ब्राह्मण ही दुःखी न थे, सारी प्रजा त्रस्त व पीड़ित थी। वह जनता से कई प्रकार के करों की वसूली करता था। उसने पेड़-पौधों, फल-फूलों पर भी कर लगा रखे थे। हृदयहीन, अन्यायी व अहम्भाषी था वह। ये ही गुण नन्द साम्राज्य के सर्वनाश के कारण बने। उसने महाबुद्धिमान चाणक्य का अपमान कर उन्हें इतना प्रताड़ित किया कि आवेश में आकर चाणक्य ने भयंकर शपथ ली जो नन्द वंश के विनाश का कारण बनी। चाणक्य ने कहा था—

'नंद वंश का नाश कर नये राज्य को संस्थापित किये बिना अपनी शिखा नहीं बाँधूंगा।'

चाणक्य का वास्तविक नाम विणुगुप्त था। विशिष्ट बुद्धिमान व वीर पुरुष था। राजनीति, अर्थनीति और शासन सम्बन्धी प्रबन्ध में

विलक्षण प्रतिभा रखता था। उसके मस्तिष्क और चन्द्रगुप्त के शौर्य पर मौर्य साम्राज्य का निर्माण हुआ। विदेशी आक्रमणों से प्रजा आतंकित थी। पराभव के उन दिनों में चाणक्य जैसा एक कूटनीतिज्ञ राजनीति के रंगमंच पर न आता तो न जाने देश की क्या स्थिति होती।

मेरे कानों तक खबरें पहुँचती थीं कि सीमा पर मेरी बहन झेलम व रावी के तटों पर यूनान के सम्राट सिकन्दर के आक्रमण हो रहे हैं। क्या कहूँ ? मगध राजाओं की राज्यलिप्सा ने यहाँ के गणतन्त्र राज्यों को स्वाहा कर दिया फिर भी कई छोटे-मोटे राज्य आपस में लड़ते ही रहे। उनमें एकता न थी। परस्पर जलन, ईर्ष्या व स्पर्धा की भावना थी। समूचे भारत देश का किसे ख्याल रहा ? सब अपने-अपने टुकड़ों के लिए लड़-मर रहे थे। एकता के इस अभाव को ही इस शस्यश्यामला धरती का भयंकर अभिशाप मानती हूँ मैं। उन दिनों से लेकर हममें वीरों की कमी नहीं। पर लहलहाती धानों के पौधों के बीच उगे हुए घास-फूसों के जैसे, देशद्रोही और स्वार्थियों की कमी भी न रहती है। अन्यथा इस भारत में विदेशी आक्रमणकारी अपना पाँव बढ़ाते कैसे ?

सिकन्दर के बारे में मैंने ढेर-ढेर कहानियाँ सुनी थीं। वे कितनी दिलचस्प थीं ? उन दिनों देश में खुशहाली थी। अन्तरर्देशीय और बाहरी व्यापार उन्नत दशा में था। धन और पराक्रम के मद में मन-मानी करता था नन्द। हाँ, नन्द वंश का अन्तिम क्षण था वह। एक के पतन में दूसरे का उत्थान निहित रहता है न ? नन्द वंश का नाश और मौर्य वंश का जन्म हुआ। युग-युग से यही प्रकृति का स्वाभाविक धर्म बना रहता है। बारी-बारी आते राजवंश तथा उनके द्वारा संस्थापित साम्राज्यों के उत्थान-पतनों को निश्चल मन से देखते रहने ही की मैं आदी हो गयी हूँ।

चन्द्रगुप्त और चाणक्य ने मौर्य साम्राज्य का निर्माण किया। राज्य के विस्तार में चन्द्रगुप्त को निरन्तर लड़ना पड़ा। पंजाब से लेकर नर्मदा पार करके भी गया। शुरू में उसे सफलता प्राप्त न हुई। सीमा प्रांतों को अपने वश में किये बिना वह राज्य विस्तार करने में लगा था। इसलिए जीते हुए प्रदेश बार-बार उसके हाथ से निकल जाते थे। एक दिन की बात है। रात का समय था। अपनी हार पर खीझता हुआ चन्द्रगुप्त वेष बदल कर नगर में घूम रहा था। एक घर में माँ-बेटे के बीच में बातें हो रही थीं। उसमें अपना नाम सुनकर कुतूहलवश वह छिपकर खड़ा हो गया।

लड़का भोजन कर रहा था। माँ पास में बैठी खिला रही थी। लड़का···थाली में जो अन्न था, उसकी गोलाकार मेंड सी बनाकर बीच का अन्न ले-लेकर खा रहा था। इस पर बौखलाकर उसकी माँ ने कहा, 'अरे। इस देश के राजा चन्द्रगुप्त जैसी यह कैसी मूर्खता कर रहे हो बेटा। जैसे चारों सीमांत राज्यों को वश में न कर महाराजा राज्य विस्तार का सपना देख रहे हैं···वैसे ही अन्न का घेरा-सा बनाकर कोई खा सकता है? हूँ···पहले सीमांत प्रदेशों को वश में न कर दूर के देशों पर आक्रमण करना चाहते हैं वे। कैसी अनोखी बात है यह।'

चंद्रगुप्त की आँखें खुल गयीं। अपनी भूल पर पछताया। चंद्रगुप्त सचमुच महान योद्धा था। उसका शासन प्रबंध, राज्य विस्तार, दंड विधान, सैनिक प्रबंध, अर्थव्यवस्था, प्रथम श्रेणी की थी। मौर्य युग, स्वर्ण युग था। उसके बारे में थोड़ा-बहुत कहने का लोभ में संवरण कर न पाती—इसका शासन प्रबन्ध सुव्यवस्थित था। साम्राज्य की रक्षा के लिए विशाल सेना थी। प्रशासन संबंधी कार्यों के निर्वाह के लिए अलग-अलग समितियाँ थीं। परराष्ट्रीय विभाग, भूमिकर वसूल इलाका, जनसंख्या का आँकड़ा लेने वाली समिति, वाणिज्य विभाग, अंतर्राष्ट्रीय मामलों पर ध्यान देने के लिए अलग अधिकारी

—ऐसे उचित प्रबन्ध द्वारा राज्य का संचालन हो रहा था। उन दिनों ही राज्य प्रांतों, जनपदों व गणों में विभाजित था। हर गाँव व नगर की अलग-अलग नगरपालिका समितियाँ थीं। समिति के अध्यक्ष की देखरेख में उस प्रदेश का प्रशासन-कार्य चलता था। राजतंत्र में प्रजातंत्र का यह विधान कितना महत्वपूर्ण था? राजा ही प्रधान न्यायाधीश और सबसे बड़ा अधिकारी था। उसी की आज्ञा सर्वमान्य थी, पर वह मनमानी नहीं कर सकता था। हर बात में उसे मंत्रि परिषद, अंतरंग समासद, प्रधान मंत्री आदि की सलाह लेनी पड़ती थी। ग्राम पालिका में यही विधान रहा कि कहीं भी मनमानी या स्वच्छाचारिता चल न पाती थी।

नगर रक्षक थे। गुप्तचर, ख़ुफिया लोग बड़ी सतर्कता से हर व्यक्ति के चाल-चलन पर दृष्टि रखते थे। पैदावार में से ः के रूप में कर लिया जाता था। कलाकरों को कर देने से छट थी। अकाल व भुखमरी से लोग अपरिचित थे। चोर-डाकू का भय था कहाँ? एक और बात है। चन्द्रगुप्त के समय में विदेशों से कितने ही यात्रीगण, परराष्ट्र के दूत आया करते थे। शिक्षा-दीक्षा की ऐसी सुव्यवस्था रही कि ज्ञान की ज्योति सर्वत्र फैली। तक्षशिला, उज्जयिनी, नालंदा जैसे विद्याकेंद्रों का नाम......आज भी अमर है न?

चन्द्रगुप्त का पुत्र बिंबसार एक महान सम्राट का पुत्र और यशस्वी पुत्र का पिता था।

'देवानाम् प्रिय'—'सम्राट अशोक' बिंबसार का पुत्र था। विश्व-इतिहास में इसने अमर स्थान प्राप्त कर लिया है। हाँ, हाँ ...गद्दी पर बैठते ही अपने पूर्वजों के जैसे राज्य विस्तार करने में तेरह सालों तक लगा था। इसका राज्य मेरी बहन नर्मदा के उस पार सुदूर दक्षिण तक फैला था। पाटली नगरी का पुनर्निर्माण करके उसने उसे और भी सुन्दर बना दिया था। सोन और मैं गर्व से फूली न समाती थी। लेकिन मैं अशोक से त्रस्त थी। वह बड़ा ही हृदयहीन, युद्ध का

प्यासा था। इसकी दृष्टि में प्राणों का कोई मूल्य नहीं था। इसने कितनों का खून बहाया, कितने राज्यों ही का सर्वनाश किया, कह नहीं सकती। लेकिन कलिंग युद्ध ने इसके जीवन को नया मोड़ दिया।

इसमें बड़ा ही क्रांतिकारी परिवर्तन हो गया। हिंसात्मक प्रवृत्ति, सामरिक जोश एकाएक ठण्डा हो गया। आशा, अभिलाषा, विचार, सब कुछ बदल गया। अशोक के राज्यकाल में बौद्ध धर्म की जो उन्नति हुई, फिर कभी न हुई। यही पहला राजा था जिसने सारे देश की यात्रा की। अन्य सम्राटों ने दिग्विजय की, लेकिन अशोक की यात्रा, धर्म यात्रा थी। तथागत के पवित्र चरणों का अनुगामी रहा, उनके धर्म के प्रचार में तन, मन, धन सब कुछ लगा दिया, मगर अन्य धर्मावलम्बियों के प्रति कटुता न रखता था। प्रजा से अपनी संतानों जैसा स्नेह करता था। देश के कोने-कोने में बौद्ध विहार, मठ, मठालयों का निर्माण किया। बुद्ध के उपदेशों को पत्थर की लाटों में उत्कीर्ण करके जगह-जगह पर लगवाया, जिनमें कुछ आज भी उनका यश गाते रहते हैं।

राजभोग के बीच वह साधु का जीवन बिताता था। पीला वस्त्र धारण कर, सरल जीवन बिताने वालों में वह सम्राट आलोड़ित सागर पर भटकते जलपोतों को मार्ग दिखाने वाले दीप स्तम्भ-सा, संसार सागर में उलझी हुई आकुल आत्माओं को शांति का मार्ग-दर्शन कराता रहा। उसके शासन काल में ज्ञान, धर्म, न्याय व सत्य के रतनदीप प्रज्वलित थे। अशोक की याद करते समय मेरा रोम-रोम आनन्द से सिहर उठता है। गर्व से छाती फूल उठती है।

अशोक के उपरांत शुंगवंश, कण्ववंश ने यहाँ पर राज्य किया। सातवाहन वंशवालों ने इस नगरी को हथिया कर एक हद तक इसका नाश कर दिया था। लेकिन शक कुल राजा अमलाट ने इस नगरी की बड़ी दुर्गति करा दी। पाटली में एक भी पुरुष जिन्दा न बचा।

सबने आखिरी साँस तक लड़-लड़कर प्राण दे दिया। केवल स्त्रियाँ व बच्चे बचे रहे।

तीसरी सदी .....एक तरह से भारत का अन्धकार युग ही था। चौथी सदी के प्रारम्भ में फिर से ज्योतिर्किरण फैलने लगी। मगध के सेनापति, चन्द्रगुप्त ने लिच्छवी राजकुमारी कुमार देवी से विवाह कर और मगध के सिंहासन पर आरूढ़ होकर राज करने लगा। इसका राज्य प्रयाग तक फैला था। समुद्रगुप्त इसी का पुत्र था। इस वीर योद्धा को लोग भारत का "नेपोलियन" कहते हैं। इसकी प्रतिभा बहुमुखी थी। साहित्य, संगीत, शास्त्र, काव्य...सबमें पारंगत था यह। राजनीति और युद्ध-कला में भी कोई इसकी बराबरी नहीं कर पाता था। आर्यावर्त्त का अधिकांश भाग इसके अधीन था। अपने शौर्य के बल पर इसने पूर्वी बंगाल, कामरूप, नेपाल, मालव, आभीर जैसे राज्यों को भी जीत लिया था। अपने इस दिग्विजय के उपरांत इसने अश्वमेध यज्ञ भी किया। समुद्रगुप्त के बाद उसके बेटे रामगुप्त ने राज्य की बागडोर सम्भाली, लेकिन उसके उपरांत समुद्रगुप्त का दूसरा बेटा, जो चन्द्रगुप्त द्वितीय के नाम से गद्‌दी पर बैठा, ने अपने पिता के नाम को उज्जवल किया। वह समुद्रगुप्त की भाँति महाबली व पराक्रमी था। साम्राज्य का विस्तार इतना हुआ कि बंगाल, पंजाब ही नहीं सुदूर अरब सागर के तटवर्ती प्रदेश भी इसके शासन में आ गये। इसकी दिग्विजय महान रही। यही देश की लोक-कथाओं में प्रचलित राजा विक्रमादित्य है। इसके पराक्रम, बुद्धि चातुर्य पर कितनी ही दंत कहानियाँ हैं।

यह वीर योद्धा ही नहीं, साहित्य प्रेमी, विद्वान व कवि भी था। इसके दरबार के कवियों में कवि कालिदास भी एक था। कालिदास के काव्य सारे संसार में प्रसिद्ध हैं। इसी के शासनकाल में चीनी यात्री फाह्यान यहाँ आया था और तीन साल तक संस्कृत का अध्ययन करने के लिए यहीं पाटलिपुत्र में रहता था

विक्रमादित्य के बाद गुप्त साम्राज्य का पतन होने लगा...बाद के राजाओं में केवल स्कन्धगुप्त मेरी याद में रहता है। पाटली को अपनी राजधानी रखते हुए विस्तृत विशाल गुप्त साम्राज्य का शासन करने की उसने बड़ी कोशिश की। लेकिन यह आसान नहीं था। इसके पिता कुमारगुप्त के समय में ही विद्रोह सिर उठाने लग गये। शांति नष्ट हो गयी। आंतरिक कलहों के अलावा बाह्य आक्र-मणों का भी सामना करना पड़ा। स्कन्द गुप्त असाधारण प्रतिभा रखता था। महापराक्रमी व कूटनीतिज्ञ होते हुए भी आंतरिक और राजपरिवार गृह-कलहों के कारण बढ़ती हुई अराजकता को रोकने में असमर्थ रह गया।

लेकिन···सच कहती हूँ। मुझे इसके प्रति बड़ी सहानुभूति थी। बेचारा आखिरी साँस तक गिरते हुए गोपुर को अपने सबल कन्धों पर सँभालता रहा। हूणों के बारे में क्या कहूँ? बर्बर, जंगली लोग थे वे। इस देश पर प्रलय की विनाशकारी बाढ़-सी, आसुरी तूफान सा चढ़ आये। लूट-पाट, ख़ून, हत्या ही इनका कर्म था। आग लगाना, लूट मचाना व खून बहाना इनके लिए मामूली बात थी। ये युद्ध के पीछे पागल थे। इनके आक्रमणों का सामना करने में ही राज्य का खजाना खाली हो गया। युद्धों में व्यस्त रहने के कारण–प्रजा की सुख-समृद्धि का ख्याल करने का अवकाश ही न रहा। स्कन्द प्रजा-हितैषी था, मगर लाचार था। उसने शपथ ली थी कि हूणों को देश की मिट्टी से भगाये बिना वह मंच पर न सोयेगा। देश और देश की प्रजा के लिए उसने अपने को न्योछावर कर दिया था। वह आजन्म अविवाहित ही रहा। एक विशाल साम्राज्य का अधिपति होते हुए भी वह कितना दुःखी था? गवाक्ष के पास मेरी धारा को देखते बैठा रहता। उसकी दृष्टि मेरी चंचल लहरों पर रहती। मगर उसका मन, उसका मस्तिष्क राजनीति की कई एक बातों पर चिन्तन करता

होता। दिन-रात उसे देश की ही चिन्ता रही। जब सारी दुनिया नींद की गोद में चैन से पड़ी रहती, यह अकेला कमरे में चहल-कदमी करता हुआ, योजनाएँ बनाता, आज्ञाएँ देता। नीरव रात के एकान्त में चिन्ताकुल इस सम्राट को देखते वक्त मेरा हृदय दुःख से भर आता।

स्कन्दगुप्त ने हूणों को कई बार परास्त किया था, मगर हूणों का दमन करने का श्रेय यशोवर्मा को ही मिलना था।

गुप्तों का शासन-प्रबन्ध कितना सुव्यवस्थित था? गुप्तवंशीय राजा वीरता, धीरता और प्रतिभा में बेजोड़ थे। शासन-प्रबन्ध, सैनिक प्रबन्ध, न्याय विधान में प्रजा के हित को कभी न भूलते थे। राजमहल के भोग-विलासमय जीवन का आनन्द लेने वाले ये वीर नरेश समय आने पर हाथ में तलवार लिये युद्ध क्षेत्र में जाने से न हिचकते थे। मन्त्रिपरिषद् की सलाह पर राजकाज चलता था। सारा राज्य कई मण्डलों, नगरों, उपनगरों और गाँवों में प्रशासनिक सुविधाओं के ख्याल से विभाजित था। गुप्तवंश के नरेश निरंकुश न थे। धर्म के प्रति इन्हें बड़ी आस्था थी। वैष्णव धर्मावलम्बी होते हुए भी धार्मिक पक्षपात नहीं किये। इनमें केवल स्कन्दगुप्त शिव-भक्त था। गुप्तकाल को हिन्दू धर्म के नवोत्थान का युग कहूँ तो भी उचित होगा। धर्म की उन्नति के साथ-साथ साहित्यिक उन्नति भी खूब हुई। कालिदास विक्रमादित्य के समय का विशिष्ट कवि थे। इनके अलावा गुप्त युग में इसके और कितने महाकवि, पण्डित, विद्वान और आचार्य रहे, जिनकी अमर गाथाएँ चिरस्मरणीय रहेंगी। भास, विशाखदत्त, शूद्रक, विष्णुशर्मा, अमरसिंह, आर्य भट्ट और वराह मिहिर को मैं कभी न भूल सकूँगी। उन दिनों में इस देश की वैज्ञानिक उन्नति कितनी महत्वपूर्ण थी।

आज की वैज्ञानिक उन्नति पर आश्चर्य होता है। चन्द्र-मण्डल पर मनुष्य की पहुँच विस्मृत कर देती है। पर गणितशास्त्र, ज्योतिष,

वैद्यक आदि में यहाँ के आचार्यों ने आश्चर्यजनक उन्नति की थी। सूर्य भट्ट का सूर्य सिद्धान्त सूर्यग्रहण व चन्द्रग्रहण पर प्रकाश डालता है। ग्रहण क्यों घटते हैं, इसके वैज्ञानिक कारणों का सूर्य भट्ट ने अपने ग्रन्थ में विवेचन किया है। सूर्य घूमता नहीं, पृथ्वी ही घूम रही है, इस सत्य का उद्घाटन उसी ने किया था। गंगोल, भूगोल, नभ मण्डल के तारागण, उनके परिवर्तन आदि पर उसने प्रकाश डाला था। वराहमिहिर ने वनस्पति की प्रकृति, स्वभाव आदि पर लिखा है। लोगों का ख्याल है कि न्यूटन ने ही पृथ्वी की आकर्षण शक्ति पर सबसे पहले अन्वेषण किया है—नहीं, इस आकर्षण-शक्ति के बारे में सदियों पहले ब्रह्मगुप्त ने स्पष्ट रूप से व्याख्या की थी।

मेरे तट पर सभ्यता, संस्कृति, विज्ञान व धर्म का विकास महोन्नत रहा। मैं हर्षित थी। इस भारत भूमि के वैज्ञानिक, ऋषि, तपस्वी, आचार्य व पण्डित थे जिन्होंने समय-समय पर अपने अन्वेषण की सच्चाइयों को प्रकट किया है। गुप्तकाल में इस देश की संस्कृति, ज्ञान, कला व सभ्यता समुद्र पार करके भी फैली थी।

गुप्तों के बाद पाटली का भाग्य पलट गया। हर्ष ने कन्नौज को अपनी राजधानी बना लिया। हर्ष के बारे में काफी कह चुकी हूँ। आठवीं शताब्दी में पालवंश ने सिर उठाया तो पाटली पुनः गौरवान्वित हुई। मगर दुर्भाग्य ने उसे न छोड़ा। खिलजी के अप्रत्याशित पैशाचिक आक्रमण का शिकार होकर यह पुरातन नगरी छिन्न-भिन्न हो गयी। बौद्ध विहार व मठालय गिराये गये। भिक्षु गणों का खून बहाया गया। बचे-खुचे लोग नेपाल, तिब्बत की तरफ भाग गये।

पटना नगरी का निर्माण शेरशाह ने किया। पाटली जैसे यह भी छोटा-सा गाँव था। एक दिन की बात है। शेरशाह मेरे तट पर टहल रहा था। एकाएक उसके मन में आया कि यहाँ पर एक किला खड़ा करें तो कितना अच्छा होगा। बस पाँच लाख के खर्च पर एक मज-

बूत किला बनवाया गया। किले के बाहर नगरी बसायी गयी। सड़कें बनायी गयीं। शेरशाह की स्वप्नपुरी 'पट्टिणम्' बन गयी। यही 'पट्टिणम्' 'पटना' हो गया। आधुनिक पटना नगरी की जन्मकहानी यही है। इस नगरी का सामरिक और राजनैतिक महत्व था। दिनों-दिन इसकी उन्नति होती गयी। चौड़ी सड़कें, योजनाबद्ध बनी बस्तियों ने इसके सौन्दर्य को बढ़ा दिया। मेरी धारा प्रधान जलमार्ग बनी रही, इसलिए पटना आसपास के प्रदेशों के लिए प्रधान वाणिज्य केन्द्र भी बन गया।

दिल्ली में मुगलों का शासन हो गया तो बड़ी कोशिश करके बादशाह अकबर ने पटना को अपने वश में कर लिया। उसी ने इस प्रदेश को सात भागों में विभाजित किया। 'रोहितास', भीमकार, मुंगेर, चारण, चंपारन, हाजिपुर और तिरहुत ये सात मंडल बने। पटना को बिहार की राजधानी बनाया गया। मुगल शासक की तरफ से यहाँ पर एक सेनापति नियुक्त हुआ। राजा मानसिंह इसके सूबेदार थे।

पिता के विरुद्ध विद्रोह करने वाले कितने ही राजकुमारों को मैं देखती आयी हूँ। मुगलों में यही क्रम चलता रहा। अकबर के विरुद्ध उसके बेटे खुर्रम और परवेज ने जब विद्रोह का झंडा फहराया, तब वे पटना के किले में ही थे। कुछ समय यह किला उन्हीं के हाथ रहा। औरंगजेब के पोते के समय में पटना का पुनर्निर्माण हुआ। दिल्ली से अमीर-उमराव पटना बुलाये गये। औरंगजेब की अरसिकता व निर्दयता के कारण ललित कलाएँ, काव्य, संगीत और साहित्य जो बिल्कुल मृतप्राय हो गये थे···अब फिर से नवजीवन पाकर पनपने लगे। दरबार की रौनक जम गयी। जागीरें बाँटी गयीं। शाहजादा दीन-दुखियों का बड़ा ख्याल रखता था। उसने पटना को दूसरी दिल्ली बनाना चाहा। उसकी कल्पना साकार होने के पहले दिल्ली में औरंगजेब की मृत्यु हो गयी। गद्दी का वारिस कौन हो? इस पर

स्पर्धा चली, शांति का नाम न रहा। शाहजादा के अरमान मिट्टी में मिल गये। मगर आज भी उसके नाम पर बसा अजीनाबाद उसकी याद को ताजा रखता है।

१६२० ई० में आगरा से अंग्रेज व्यापारी यहाँ आये। इनके पहले ही डच और फ्रांसीसी व्यापारियों का यहाँ पर आगमन हो चुका था। अट्ठारहवीं सदी में अलीवर्दी खान के शासन में इस नगरी को अकथनीय दुःख झेलने पड़े थे। फिर तो कम्पनी वालों के लिए यह फौजी अड्डा बन गया।

राजगीर, पाटलिपुत्र और पटना की लम्बी कहानी मैंने सुनायी है। इन नगरियों को कितनी चोटें खानी पड़ी? कैसी-कैसी मुसीबतों का सामना करना पड़ा? कभी इनका भाग्य चमका, मगर अब राजगीर और पाटली ऐतिहासिक भग्नावशेषों का भंडार बने बिखर रहे हैं। पटना का भाग्य अब भी उज्ज्वल है। बिहार राज्य की यही राजधानी है।

पटना के आगे बाँकीपुर, दीनापुर, बदवा आदि नगरियाँ उल्लेखनीय हैं। गंडकी नामक नदी मुझसे मिलती है। नेपाल के उत्तरी हिस्से पर सुमीस्वरा पहाड़ों से उत्पन्न होकर 'चंपारन', मुजफ्फरपुर, दरभंगा जिलों से होकर बहती यह 'रुसवा' पर पहुँचते ही दक्षिण की तरफ मुड़ जाती है। थोड़ी दूर के बाद पूरब की तरफ बहती यह मुंगेर जिले में मुझसे मिलती है। नेपाल से आती 'भागमति' रुसवा के पहले ही गंडकी को अपना पानी दे देती है।

बूढ़ी गंडकी नामक एक और नदी से नेपाल से आती सात छोटी नदियाँ आ मिलती हैं। फलतः उसे सप्त गंडकी कहते हैं। घूम-घामकर चलती यह नदी हाजिपुर में पहुँचती है। कुल मिलाकर ३०७ किलोमीटर प्रवाहित होने के उपरान्त, मुजफ्फरपुर की दक्षिणी सीमा पर बहती मेरे साथ 'सिमारीपुर' के पास मिलती है। यहाँ पर मेरा

पाट लगभग एक मील विस्तार का है। दोनों किनारों को समेटती चलती मुझे पार करना हो तो स्टीमलांच या नौका की सहायता लेनी होगी। वर्षा के दिनों में तो मैं और विशाल बन जाती हूँ। मेरा सुखद प्रवाह प्रलय-गर्जन करने लग जाता है।

जब आकाश पर नीरभरी बदलियाँ, काले-काले मेघ छाये रहते हैं, तब मैं काली घुँघराली अलकों को बिखराये, मौन तपस्या में लीन तपस्विनी-सी गम्भीर दीखती हूँ। बाढ़ के दिनों में मेरी क्षुब्ध धारा के निकट आने का साहस कोई नहीं करता, हैरत से हाथ जोड़ देता है।

शरत्काल में मेरी शोभा चित्ताकर्षक है। मोहक मुसकान लिये, बड़ी अदा से अपूर्व उन्माद लिये चलने लगती हूँ तो दर्शक मोहाच्छन्न हो जाता है। जिन्दगी का मधुर गान गानेवाली यही···ऐसा रौद्र रूप धारण कर लेती है, आपको विस्मय होगा। सच कहती हूँ, उस समय मैं अपने होश में कहाँ रहती हूँ। मेरे दिल में दया-माया जरा भी नहीं रहती। लहरों में तैरती नौका को, मेरी धारा को चीरती हुई बढ़ती नाव को एकाएक उलटा देने में मुझे पैशाचिक आनन्द मिलता है। सूर्योदय की सुनहली किरणों में, स्निग्ध चाँद की शीतल छाया में लहरों के हाथ हिलाकर मनमोहक हँसी की कलध्वनि से वायु-मंडल को गुँजाती हुई आपको बुलाती रहती हूँ—'आओ···आओ··· मेरे सौन्दर्य का पान करो···' दर्शक मंत्रमुग्ध-सा रह जाता है। वन-स्थलियों के विभिन्न रंगीन फूलों की मालाएँ मेरे उन्नत वक्ष की शोभा बढ़ाती हैं···उनकी तीखी मादक गंध नस-नस में अपूर्व मादकता भर देती है—ओह! मेरे इस जादू भरे इन्द्रजाल ने कितनों के प्राणों को स्पन्दित कर दिया है, कौन जाने!

एकाएक......मेरा दिल आक्रांत हो उठता है। बिजली कड़कती और बवंडर चलने लगता है। मैं दानवी बन जाती हूँ... मेरी दृष्टि में अब किसी का मूल्य नहीं। किसी का आर्त्तनाद, चीख-पुकार,

रोदन मुझे विचलित कर नहीं पाता। "ओह! करुणामयी गंगा मैया। इतनी निर्मम कैसे बनी हो तुम" ऐसा करुण विलाप आकाश में गूँज उठता। न मुझे किसी की परवाह है न चिंता।

बिहार की सीमा पार आ गयी हूँ। मुझे आगे बढ़ना है, मगर मन नहीं करता। यह मेरी प्रिय भूमि है। तथागत और महावीर जैसे महात्माओं की चरण-धूलि से यह पवित्र हुई है! बिम्बिसार से लेकर सम्राट अशोक तक, चन्द्रगुप्त से लेकर यशोवर्मा तक अद्वितीय सम्राटों ने यहाँ शासन किया है। यह बड़ी पुनीत और पवित्र भूमि है। महामानवों की अवतार-भूमि है!

धीरे-धीरे मैं मुंगेर के पास अलस भाव से पहुँचती हूँ।

दक्षिण की तरफ से आकर मुझसे मिलनेवाली नदी 'क्यूल' है। हजारीबाग जिले में उत्पन्न होकर, 'सरपहाड़ी' नामक पहाड़ियों के पास एक तंग घाटी के द्वारा मुंगेर आ पहुँचती है। इस जिले में कई नदियाँ मुझे अपना पानी देती हैं। उत्तर में बूढ़ी गंडकी आ मिलती है। मेरे दक्षिणी किनारे पर मुंगेर है। दक्षिण-पूरब की तरफ से आती मैं मुंगेर के समतल मैदानी भूभाग के निकट मुड़ जाती हूँ। इसके बाद लगभग १९ किलोमीटर दक्षिण की ओर चलती मैं फिर से पूरब दिशा की तरफ घूमकर आठ किलोमीटर बहती हूँ।

मुंगेर .....उर्वर भूभाग है। इस जिले में मेरा बहाव लगभग ११२ किलोमीटर का है। यहाँ कष्टहर्षिणी घाट और 'सीता कुंड' का दर्शन व स्नान करने यात्री लोग आया करते हैं। एक जमाने में यह अंग देश की राजधानी थी। १२वीं सदी में यहाँ मुगलों का आधिपत्य रहा। बंग देश के सुल्तानों के लिए यह प्रदेश सैनिक केंद्र था। बंग देश को अपने अधिकार में लेने की इच्छा से हुमायूँ बड़ी सेना लेकर आया। उस वक्त शेरशाह बिहार में रहते हुए बंगाल पर शासन कर रहा था। शेरशाह रणकुशल था। हुमायूँ को फँसाने के

इरादे से वह शुरू में हारा हुआ-सा पीछे हट गया। इसे सच मानकर हुमायूँ बंगाल के अंदर घुस गया। तुरंत शेरशाह ने चारों तरफ से बंगाल को घेर लिया और हुमायूँ को बुरी तरह हार खानी पड़ी। अंत में अकबर ने ही भयंकर युद्ध के बाद इस शहर को शेरशााह के हाथों से छीना।

मुंगेर हमेशा मुख्य नगरी बनी रही। व्यापार, वाणिज्य और फौजी कार्रवाइयों के लिए यही विख्यात केन्द्र रहा। पुत्र का पिता के प्रति विद्रोह करना मुगल राजवंश में मामूली बात थी। शाहजहाँ के बेटे 'शुजा' ने, जो बङ्गाल का सूबेदार था, यहीं पर अपना विद्रोह का झण्डा फहराया। यहाँ के किले को उसने मजबूत बनाया। मेरे किनारे से सटे-सटे खड़े किले की चहारदीवारियों की मरम्मत करवायीं। दस किलोमीटर लम्बी उस दीर्घकाय दीवार को देखनेवाले दंग रह जाते थे। वीरता, साहस व बहादुरी में शुजा और किसी से कम न था, मगर भाग्य देवता ने औरंगजेब को ही वर लिया था।

१७वीं सदी में निकोलस क्राफ्ट नामक डच वैद्य कैदी के रूप में यहाँ लाया गया था। मुंगेर का यह दुर्ग, परकोटा और सारे परिवेश ने उसे मोह लिया। मेरी अतुल जलराशि, मेरे तीर पर शांत पड़े हुए इस शहर ने उसके भावुक मन को इतना आकर्षित कर लिया कि उसने इस पर एक पुस्तक ही लिख डाली। १७४५ ई० में आया था अलीवर्दी खाँ। उसने भारी सेना सहित इस दुर्ग पर हमला बोल दिया व दुर्ग को भारी क्षति पहुँचायी। फिर भी मीर कासिम ने इसका बड़ा ख्याल रखा। मेरे जलमार्ग द्वारा खूब व्यापार चलता था। याता-यात की सुविधा के कारण भी मुंगेर प्रसिद्ध वाणिज्य-केन्द्र बना रहता था।

अक्सर विदेशी यहाँ आते रहे। बंग देश की उपजाऊ मिट्टी उन्हें ललचा रही थी। डच, पुर्तगीज, फ्रांसीसी, अंग्रेज......जैसे यूरोपीय देशों के व्यापारियों का ताँता लगा रहता था। मुंगेर की जलवायु

इनके अनुकूल रही। भारत की कड़ी धूप उनसे सही न जाती थी। दूर-दूर तक फैली हरियाली, मेरी शीतल सलिल-धारा, वनों की विस्तृत छाया, एकान्त, कोलाहल रहित वातावरण, नीलाभ पहाड़ियों में गांभीर्य, सुनहले खेतों ने उनके कौतूहल को बढ़ा दिया। कम्पनी के कई अंग्रेज अधिकारी और व्यापारी लोग यहीं घर बनाकर रहने लगे थे। उनके लिए मुंगेर पहाड़ी सुखवास-स्थल था, जहाँ के वायु-मण्डल में उन्होंने सुख की साँस ली। आज भी ग्रीष्म ऋतु में आराम लेने के लिए लोग यहाँ आया करते हैं।

कम्पनी का नाम लेते ही मेरा दिल कभी-कभी आक्रांत हो उठता है। इस सुनहली धरती को अपने वश में करने के लिए उन्होंने कौन-सा कुकृत्य, कौन-कौन-सा पापाचार न किया? धर्म पर शायद उन्हें विश्वास न था। लूट-पाट, हत्या, किसी से वे पीछे न रहे। मीर कासिम और उसके बच्चे यहीं पर मौत के घाट उतारे गये। कम्पनी की सेना के पैशाचिक अत्याचारों का विवरण देना हो तो वही लम्बी कथा हो जाती। बर्बर आक्रमणकारियों से, अपने को सभ्य कहनेवाले ये गोरे लोग अपनी क्रूरता व हृदयहीनता में कम न थे। मीर कासिम केवल दो सालों तक ....मेरे तट पर के इस दुर्ग में शांति से रहा—उसने अपनी सारी धन-दौलत इसी दुर्ग में लाकर छिपा रखी थी।

कम्पनी के हाथ में आने पर मुंगेर का भाग्य बदल गया। यह सुन्दर नगरी फौजी अड्डा व केन्द्र बन गयी। यह विशिष्ट दुर्ग गोदाम में बदल गया। आज आप यहाँ आएँ तो मेरे तट पर अपनी विगत गरिमा की गाथा सुनानेवाले ये खंडहर, दुर्ग व महल आपको विस्मय-विमुग्ध कर देंगे; लेकिन आज यहाँ न फौज है न फौजी गोदाम। बिलकुल महत्त्वहीन .....छोटी-सी नगरी खामोश खड़ी है।

मुंगेर के आगे मैं भागलपुर जिले में प्रवेश करती हूँ। मेरी धारा

यहाँ पर बहुत गहरी और विस्तृत पाट के होने से, स्टीमलांच और जलपोत का आवागमन चलता रहता है। बिहार की सीमा को छोड़ने के पहले मैं कोसी का स्वागत करने को तैयार हो जाती हूँ। हिमालय के पूर्वी हिस्से में नेपाल की तरफ से यह उत्पन्न होती है। इसकी लम्बाई लगभग ४८० किलोमीटर है। बिहार में यह २५६ किलोमीटर बहती है। इसको 'बिहार का शोक' और 'बिहार का अभिशाप' कहते समय मेरा मन उदास हो जाता है। 'कोसी' सततवाहिनी है, कभी सूखती ही नहीं। इसकी अपार जलराशि और इसके द्वारा लाई हुई उर्वरा मिट्टी के कारण बिहार समृद्ध बना रहता है, इसमें कोई सन्देह नहीं। लेकिन यह बड़ी उद्दण्ड प्रकृति की है। इसकी धारा में इतना वेग और गति है कि वह सब कुछ को बहा ले जाती है। हद से ज्यादा हो तो अमृत भी विष बन जाता है न! स्त्री-सुलभ सौम्यता, धीरज व मधुरता इसमें नाममात्र के लिए भी नहीं। शांत मनःस्थिति में इसको देखना दुर्लभ है। लोग इसकी स्वेच्छाचारिता व मनमानी से तंग आ जाते हैं। हर साल यह बाढ़ से असंख्य लोगों के प्राण ले लेती है। हाँ, हाल में इसे नियंत्रित करने की कोशिशें हो रही हैं; बाँध भी बना है। मगर इससे भी बिल्कुल आश्वस्त रहना कठिन है।

हम नदियाँ कभी-कभी अपना मार्ग बदल लेती हैं। ऐसे विद्रोही परिवर्तनों में भी 'कोसी' ही सबसे आगे है। पहिले पूर्णिया के दक्षिण में यह मुझसे आ मिलती थी। पर अब तो लगभग ३० किलोमीटर पश्चिम से ही मुझसे आ मिलती है। पिछले २०० सालों में बार-बार किये परिवर्तनों में यह ११२ किलोमीटर उत्तर की तरफ हट ही नहीं गयी, बल्कि इसने १६० किलोमीटर के क्षेत्र को भारी क्षति पहुँचायी है। रेत और मिट्टी को बहा लाकर तटवर्ती प्रदेशों में इतना भर देती है कि खेत बरबाद हो जाते हैं। तलहटी में दलदल और मिट्टी जम जाने के कारण वह ऊँची हो जाती है और पानी को आगे ले जाने में

असमर्थ-सी होकर किनारों पर बह निकलती है। खासकर बाढ़ के दिनों में रौद्र रूप लिये, धान के खेत, तट पर के बाग-बगीचे, झाड़-झंखाड़, ऊँची-ऊँची वृक्षावलियाँ—सबको पल भर में ढहा देती है। किनारों को तोड़कर बहना इसकी प्रवृत्ति है। कब, कहाँ वह निकलेगी, इसकी राक्षसी भूख कितने प्राणों को चाट लेगी, इसका कोई निश्चय नहीं। गाँव के गाँव, बस्तियाँ, सब कुछ जलमग्न हो जाते हैं। खूनी हाथ बढ़ाकर सबको निगल लेगी यह।

'सनकोसी', 'अरुण कोसी', 'ताम्रकोसी', 'मोडिया कोसी', 'लिक्खू', 'दूध कोसी', 'डम्बार' आदि सात उपनदियाँ 'कोसी' को अपना सारा पानी दे देती हैं। इसलिए इसको 'सप्तकोसी' भी कहते हैं। शुरू में दक्षिण-पश्चिम की तरफ बहती यह, बाद में दक्षिण फिर दक्षिण-पूरब की दिशा में चलने लगती है। पहाड़ की गोद से उतरते ही कोसी कई धाराओं में बँट जाती है। बिहार में प्रवेश करके २५६ किलोमीटर उत्तर की तरफ प्रवाहित होने पर भी मुझसे मिलते वक्त पूरबमुखी हो जाती है। इसकी धारा वेगवती है। हर साल यह जो मिट्टी व रेत बहा लाती है, वह पाँच-छह करोड़ टन होता है।

इस अजेय विद्रोहिणी को नियंत्रित करने के लिए जो योजनाएँ बनी हैं, उनमें अधिकांश पूरी हो चुकी हैं। इसके ऊपर पुल, बाँध, जलाशय आदि बने हैं। सिंचाई की नहरें, जलशक्ति उत्पादन, सुविधा-जनक जलमार्ग, बाढ़ों का नियंत्रण, किनारों के कटाव व मिट्टी के स्राव की रोकथाम, मलेरिया को दूर करना आदि कितनी ही महत्त्वपूर्ण बातों पर ध्यान दिया जा रहा है। कोसी की नहरों के द्वारा नेपाल में कई लाख एकड़ का सिंचन होता है। इसके अलावा पूर्णिया, दरभंगा, मुजफ्फरपुर जिलों को फायदा मिलता है। आरन, ताम्भर, गौरी आदि कोसी की मुख्य सहायक नदियाँ हैं।

मुंगेर, पूर्णिया, भागलपुर कभी अंग देश के अन्तर्गत थे। पूर्णिया—'पूरण' अर्थात् कमल फूल। इस प्रदेश में कमल के फूल खूब मिलते हैं,

शायद इसीलिए 'पूर्णिया' नाम पड़ा होगा। इसके अलावा कोसी के जलप्रवाह के कारण नीची जमीन दलदली हुआ करती है, जहाँ पर घास-फूस, झाड़-झंखाड़, घने अरण्य-से उग आते हैं। पूर्णिया चारों तरफ से जंगलों और विकट वनस्पतियों से घिरा है। यहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य अनुपम है।

उन दिनों कोसी पूर्णिया के बीच में, फिर उसकी सीमा पर बहती थी। लेकिन अब तो ८० किलोमीटर पीछे हट गयी है। पूर्णिया का उत्तरी हिस्सा रेतीला है। यहाँ पर कोसी की पुरानी नहरें बहुत कुछ हैं। कोसी अपना मार्ग बदल लेती है न, इसलिए नहरें भी नयी नहीं बनायी जाती हैं। इतना पानी रहता है, मिट्टी तो उर्वरा है— फिर भी बंजर जमीन की कमी नहीं। भूमि समतल मैदानी नहीं, ऊबड़-खाबड़ व ऊँची-नीची होने से खेती करना, सिंचाई की व्यवस्था रखना कठिन होता है। रेतीले टीलों पर खूब जंगल उग आते हैं। हर कहीं जंगली घास-फूस की झाड़ियाँ नजर आएँगी। यहाँ जल-वायु भी उतना सुखकर नहीं। हाँ, सन की पैदावार खूब होती है।

मुंगेर के आगे राजमहल पहाड़ियों का चक्कर काटती हुई मैं पश्चिमी बंगाल में प्रवेश करती हूँ। ये पहाड़ियाँ २३८ वर्ग किलोमीटर भूभाग में फैली हैं। ये छोटानागपुर पठार की उत्तरी-पूर्वी सीमा बनाती हैं और इनके दक्षिण में ही दामोदर घाटी है। इन पहाड़ियों में एक विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि इसके उत्तरी हिस्से में, उत्तर की तरफ ३८ किलोमीटर और दक्षिण की तरफ आठ किलोमीटर का एक सुविस्तृत, नैसर्गिक शोभा से युक्त समतल प्रदेश है। यह समतल मैदानी प्रदेश चारों तरफ टीलों और पहाड़ियों में घिरा हुआ बड़ा ही सुन्दर नजर आता है।

●

7

बंग-भूमि !

बंग-भूमि पर पाँव रखते ही मैं नयी स्फूर्ति का अनुभव करती हूँ। उन दिनों आज का पश्चिमी बंगाल कहाँ था ? वेदकालीन रचनाओं में बंगाल का कोई उल्लेख नहीं है। तब बंगाल का अस्तित्व ही नहीं था। राजमहल पहाड़ियों के निकट मेरा गंगासागर से संगम हो रहा था। पश्चिम में बंगाल से लेकर असम तक का लम्बा-चौड़ा मैदानी प्रदेश राजमहल और मेघालय पठार तक ही सीमित था। आज जहाँ पर बंगाल है, वहाँ सागर लहरा रहा था। हाँ, कुछ द्वीप इधर-उधर बिखरे पड़े थे।

बाढ़ के समय नदियों द्वारा वहाकर लायी गयी रेती-मिट्टी तटवर्ती प्रदेशों में बिखर जाती थी। इस तरह निर्मित डेल्टा प्रदेश उत्तरोत्तर विस्तृत होता गया। वाद में वही शस्यश्यामला बंगभूमि बना। मेरे अतिरिक्त ब्रह्मपुत्र और मेघना जैसी नदियाँ इस प्रदेश की जन्मदात्री हैं। हम तीनों ने कई बार अपना मार्ग ही नहीं, रूप भी वदल लिया है। मेरी सहायक नदियाँ, मुझे त्यागकर ब्रह्मपुत्र की हो जातीं और ब्रह्मपुत्र मार्ग बदलकर मुझे गले लगाने दौड़ी आती। सिक्किम से आती तिस्ता कभी जफ्फार के निकट मुझसे मिलती थी; पर १७८७ ई० की भयंकर बाढ़ में वह भटक गयी और ब्रह्मपुत्र से मिल गयी। बार-बार राह वदलती हम नदियों की कहानी रोचक है। जैसे-जैसे हम बदलती हैं, हमारा नाम भी वदल जाता है—पुरानी तिस्ता, नयी तिस्ता, पुरानी ब्रह्मपुत्र, नयी ब्रह्मपुत्र।

बंग-भूमि तरुण है। जिस तरह बंग देश में अशान्ति, संघर्ष व संग्राम चलते रहते हैं, उसी तरह भूगर्भ में भी हलचलें होती रहती हैं। कभी भूमि ऊपर उठती है, कभी धँसती है। इसके कारण भी हम नदियों के प्रवाह में बाधा उपस्थित हो जाती है। २५०० साल पहले ब्रह्मपुत्र मेघना से मिलती थी। लेकिन कालान्तर में मेघना को छोड़कर मुझसे मिलने दौड़ी आयी। हम दोनों के मिलन से पद्मा वनी। ब्रह्मपुत्र की इस वदली हुई नयी धारा का एक नाम यमुना भी है। यह वङ्गाल की यमुना है। मेघना से मिलनेवाली धारा का नाम है, पुरानी ब्रह्मपुत्र। इनके अतिरिक्त मधुमति, इच्छामति, भागीरथी नामक कई शाखाएँ भी मुझसे अलग होती हैं। मेघना आसाम की ऊँची पहाड़ियों से आती है और ब्रह्मपुत्र-गंगा की सम्मिलित धारा पद्मा के बायें किनारे पर आ मिलती है। आगे चलने पर इसी धारा का नाम मेघना पड़ जाता है।

कलकत्ता भारत के प्रधान महानगरों में से एक है। आज कलकत्ता के वैभव की सर्वत्र चर्चा है। पर सातवीं सदी तक वह टीलों, पहाड़ों और झाड़-झंखाड़ों से भरा अरण्य प्रदेश था। सुन्दरवन, कलकत्ता आदि पूर्ण रूप से विकसित नहीं हुए थे। प्रकृति की परिवर्तन-लीला विचित्र है—कहीं भूमि उठती गयी, तो कहीं धँसती गयी। कलकत्ता के आसपास ऊभरी हुई ऊबड़-खाबड़ पहाड़ियाँ क्रमशः धँसती गयीं .. भूगर्भ-वेत्ताओं ने अपने अनुसन्धान द्वारा कितने ही आश्चर्यजनक सत्यों को प्रकट किया है। वराहमिहिर ने अपने "वृहत् संहिता" में इस प्रदेश का 'समुद्रात' के नाम से उल्लेख किया है - समस्त बहाकर लायी गयी मिट्टी अर्थात् 'ज्वारभाटा' के कारण वना हुआ प्रदेश। मेरे द्वारा बहाकर लायी गयी रेती-मिट्टी से वना यह प्रदेश सोनार वांगला कहलाता है—और है भी वह सचमुच सोनार बांगला।

एक और वात! मेरे प्रवाह-क्षेत्र, मेरे जलमार्ग, मेरे तट-स्थित

प्रदेशों पर न जाने कितने ही लोगों ने लिखा है। मेरा आज का रूप उन तमाम काव्य-कथनों पर प्रश्न-चिन्ह लगा देता है। वे मनगढ़ंत, कपोल-कल्पित लगते हैं। रेनल साहब ने मेरे बारे में जो कुछ लिखा है, आज मैंने उससे बिल्कुल भिन्न मार्ग अपना लिया है। नदियाँ परिवर्तनशील होती हैं। पहले मैं राजमहल पहाड़ियों से होकर बहती थी। उसी मार्ग पर मुर्शिदाबाद, बर्द्धमान से होकर भागीरथी के नाम पर एक पतली छोटी धारा बहकर सागर में मिलती है।

कभी बंगाल अनार्य भूमि मानी जाती थी। आर्य जैसे आगे बढ़े, द्रविड़ पीछे की ओर हटते गये। पीछे हटते-हटते वे यहाँ आकर बस गये। आर्यावर्त्त में यह अनार्य प्रदेश रह गया। लेकिन यह भी बहुत दिनों तक न चला। आर्य यहाँ के निवासी हो गये। आर्य-अनार्य संस्कृतियों का ऐसा मिलन हो गया कि सब हिन्दू हो गये। आज बंगाल की जो संस्कृति, धर्म, रीति-नीति, आचार-विचार प्रचलित हैं, वे इस अद्‌भुत मिलन की उपज हैं।

सांख्य दर्शन के रचयिता, प्रणेता व आचार्य कपिल मुनि बंग-भूमि के निवासी थे। उनका आश्रम सुन्दरवन के निकट एक द्वीप में था। बंगाऊ मगध साम्राज्य के उत्थान व पतन का मूक दर्शक रहा, लेकिन समुद्रगुप्त के राज्यकाल में यह उसके साम्राज्य का एक अंग था। ग्रीक इतिहासकारों ने वीर-प्रसविनी बंगभूमि की बड़ी प्रशंसा की है। वंग-भूमि का स्वर्णयुग पाल वंशीय राजाओं का शासन-काल था। इसमें कोई सन्देह नहीं। मेरे तीर पर बसी गौड़ नगरी लगभग सात सौ सालों तक पालवंशीय राजाओं की वैभवशाली राजधानी रही। कला, साहित्य, शिक्षा, वाणिज्य ··हर क्षेत्र में बङ्गाल ने अद्वितीय उन्नति की थी। इण्डोचीन, इण्डोनेशिया, तिब्बत आदि देशों से उसका व्यापारिक सम्बन्ध था।

पाल वंश के बाद सेन वंशीय राजा गद्दी पर बैठे। बंगाल के अन्तिम

हिन्दू राजा यही थे। राजा लक्ष्मण सेन के राज्यकाल में मुगलों की चढ़ाई हुई। मुगलों के आधिपत्य में भी सेन वंश के लोग उनके अधीनस्थ राजा बने रहे। अन्त में कम्पनी ने इस वंश का नामोनिशान मिटा दिया। जैसे मुगलों ने आक्रमणकारियों के रूप में भारत पर अपना आतंक फैलाया और अधिकार जमाया, वैसे बंगाल को भी उन्होंने अपने कब्जे में लिया था। लेकिन दिल्ली की भाँति यहाँ पर उनका शासन स्थिर न रहा, बार-बार विद्रोह होते रहे।

जब बाबर हमले पर हमले बोल रहा था, यहाँ चैतन्य महाप्रभु प्रेममूला भक्ति का प्रचार कर रहे थे। यहाँ, बंग की शस्यश्यामला धरती पर भक्ति का आन्दोलन चल रहा था—भक्ति के गदगद कण्ठ से चैतन्य महाप्रभु मानव की समता संस्थापित कर रहे थे। चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रवाहित भक्ति-धारा में बंग जनता निमग्न हो गयी। वाह्य जगत के सारे संतापों और राजनैतिक दाँव-पेंचों का ख्याल तक उन्हें न रहा। यह भक्ति और श्रद्धा की भूमि है। धार्मिक श्रद्धा से भरी बंग जनता बड़ी भावुक होती है। चैतन्य की प्रेममूला भक्ति में ये पूर्णतः आत्म-विस्मृत हो गये।

उधर औरंगजेब की मृत्यु हुई, इधर बंग-भूमि का शासन स्वायत्त हो गया। नवावों की तूती बोल उठी। इन नवाब्रों में अन्तिम शासक था 'सराजुद्दौला'। सिराजुद्दौला के व्यक्तित्व-कृतित्व पर अनेक ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं।

बंगाल के नवोत्थान एवं विकास में अंग्रेजी शिक्षा का बड़ा हाथ है। मगर कम्पनी के शासन-काल में इस प्रदेश को अकथनीय कठिनाइयों से गुजरना पड़ा।

अतीत में इसका नाम सूबा बंगाल था। यह अतीत के अविभाजित बंगाल की बात है। उस समय विहार और उड़ीसा को मिलाकर ही 'सूबा बंगाल' कहा करते थे। बाद में असम को भी इसके साथ

मिला लिया गया। लेकिन १८७४ ई० में असम अलग प्रांत बनाया गया।

१९०५ ई० में लार्ड कर्जन यहाँ का गवर्नर था। उसने बंग का विभाजन किया, जिसका परिणाम बड़ा दुखदायी था। केवल बंग जनता ही नहीं, सारे भारत ने इस विभाजन का विरोध किया। पूर्वी बंगाल के नाम पर पन्द्रह जिले और असम अलग बन गया। बिहार, उड़ीसा के थोड़े हिस्से तथा बंगाल के अन्य जिले पश्चिम बंगाल बने। इस विभाजन पीछे कर्जन की कूटनीति थी। शिक्षित, बुद्धिवादी बंगालियों में आजादी की प्यास एवं विद्रोह की भावना को पनपते देखकर उसने उन पर यह करारी चोट की थी। उसने आशा की थी कि विभाजन के होने से राजनैतिक जागृति को आसानी से कुचल सकेगा। मगर हुआ क्या ? विद्रोह का ज्वालामुखी फूट पड़ा। आतंकवाद इस तरह छाया कि १९११ ई० में विवश हो अंग्रेजी सरकार को फिर से दोनों बंगाल को एक करना पड़ा। हाँ, इसी समय राजधानी भी कलकत्ता से दिल्ली बदल दी गयी। असम, बिहार, उड़ीसा—तीनों अलग प्रांत बन गये।

१९४७ ई० में बंगाल का फिर विभाजन हुआ। पूर्वी और पश्चिमी बंगाल का जन्म हुआ। इसका क्षेत्रफल ८६१९२ वर्ग किलोमीटर है। नेपाल, सिक्किम, भूटान, असम, बांग्ला देश, बंगाल की खाड़ी, उड़ीसा, बिहार आदि इसकी सीमाएँ हैं। इसके १६ जिले हैं—दार्जिलिंग, जलपाईगुड़ी, कूचबिहार, पश्चिम दिनाजपुर, मालदा, मुर्शिदाबाद, बीरभूमि, बर्दवान, बाँकुरा, पुरुलिया, नाडिया, मिदनापुर, हुगली, हावड़ा, कलकत्ता, २४ परगना आदि।

दार्जिलिंग उत्तरी सीमा पर है, जिसके तीन ओर नेपाल, सिक्किम और भूटान हैं। इसका क्षेत्रफल २००४ वर्ग किलोमीटर है। इस जिले का उत्तरी हिस्सा टीलों और पहाड़ियों का है। दक्षिणी और उतरी हिस्से समतल मैदान हैं। तिस्ता और उसकी सहायक नदियाँ यहाँ

बहती हैं। यहाँ पर घने जंगल हैं। चाय के बागान और फलोत्पादन यहाँ खूब होता है। यहाँ से हिमालय की चोटियों का दर्शन अलौकिक होता है। कांचनजंघा और एवरेस्ट के शिखरों को देखने यात्रीगण आते रहते हैं। जलपाईगुड़ी दार्जिलिंग के दक्षिण में है। इसके एक तरफ भूटान और दूसरी तरफ कूचविहार है। इसका क्षेत्रफल ६२३४ वर्ग किलोमीटर है। तिस्ता की बाढ़ों से इस जिले को काफी हानि उठानी पड़ती है। कूचविहार के पूरब की तरफ बांग्ला देश है। इसका विस्तार ३३८ वर्ग किलोमीटर है। दिनाजपुर का एक हिस्सा बांग्ला देश में, दूसरा हिस्सा पश्चिम बंगाल में है। ५३१५ वर्ग किलोमीटर विस्तार में इस जिले की बनावट अप्राकृतिक है।

मालदा का विस्तार ३७१९ वर्ग किलोमीटर है। इसकी पश्चिमी सीमा पर मैं बहती हूँ। इसके पूरब में बांग्ला देश है। हाँ, भागीरथी मुझसे अलग होकर शुरू में पूरब की तरफ, फिर दक्षिण की तरफ घूम-कर प्राचीन नगरी गौड की २१ किलोमीटर के लगभग प्रदक्षिणा करके मुझसे आ मिलती थी। लेकिन अब मुर्शिदाबाद में मुझसे अलग होकर बहती है। मुर्शिदाबाद ऐतिहासिक महत्त्व रखनेवाला प्रदेश है। यह मेरे और पद्मा के दक्षिण में है। नवाबी जमाने में इसकी शान-शौकत निराली थी। सिराज ने इसे अपनी राजधानी बनाया था। यह कलकत्ता से १९५ किलोमीटर पर है। कम्पनी के समय में यह वाणिज्य का प्रधान केंद्र था। क्लाइव को यह नगरी बहुत पसन्द थी। इतिहास के रंगमंच पर नवाबी शासन के उत्थान-पतन का जो अद्वितीय नाटक चला, उसकी भव्य स्मृति के रूप में नवाबों के महल, मस्जिद व मकबरे आज भी अपनी पुरानी वैभव-गाथा गुनगुनाते दीखेंगे। मोती झील, खुशबाग और मस्जिदों को देखते वक्त लगता है, जैसे मुगल व सुल्तान जीवन का सुख-आराम लूटने, विलासमय जीवन बिताने ही इस धरती पर आये थे।

बीरभूमि—विहार के पूरब में मुर्शिदाबाद के उत्तर में है, जिसका विस्तार ४५४१ वर्ग किलोमीटर का है। मयूराक्षी और उसकी सहायक नदियाँ इसका सिंचन करती हुई अन्त में भागीरथी में मिलती हैं। वर्दवान—बीरभूमि के दक्षिण में तथा हुगली पूरब और उत्तर की तरफ बिहार की सीमा तक फैला है। इसका क्षेत्रफल ७०३४ वर्ग किलोमीटर है। बाँकुड़ा दामोदर नदी के दक्षिण में है, जिसके एक तरफ पुलसिया, दूसरी तरफ बर्दवान व हुगली है। इसका विस्तार ६८७१ वर्ग किलोमीटर है। दामोदर की सहायक नदी 'शाली' भी यहाँ बहती है।

पुरुलिया त्रिकोणात्मक है। भाषावार प्रान्तों के बँटवारे के कारण विहार से यह पश्चिम बङ्गाल में आ मिला है। 'कामसापति' इसकी मुख्य नदी है। इसका क्षेत्रफल ६२५५ वर्ग किलोमीटर है। 'नाडिया' भागीरथी के पूरब में पड़ता है। यह डेल्टा प्रदेश है। यहाँ पर कई छोटी-मोटी नदियाँ भागीरथी को अपना पानी देती हैं। भागीरथी नाम भ्रम में डाल सकता है। बङ्गाल में मेरे विविध नाम और रूप हैं। भागीरथी मेरी ही एक शाखा है। मेरी एक और धारा जो बांग्ला देश में बहती है, उसे 'पद्‌मा' कहते हैं। मैं दक्षिण-पूरब की तरफ से आती हूँ—ब्रह्मपुत्र दक्षिण-पश्चिम से लहराती आती है। पद्‌मा नामक मेरी धारा से उसका संगम हो जाता है। आगे उनकी संयुक्त धारा मेघना नाम पाती है। मेरी पश्चिमी शाखाओं में एक भागीरथी है और दूसरी को छोटी भागीरथी कहते हैं। पद्‌मा को लोग पुनीत गंगा नहीं मानते। गंगा का पानी लेना है तो लोग तातेपुर में आएँगे। मेरी धारा बिखरे जाल-सी सारी बङ्ग भूमि में फैलती है, लेकिन छोटी भागीरथी ही 'गंगा माई' के नाम पर आदर पाती है। नाडिया जिले में जलंगी, इच्छामति, छरनी आदि नदियाँ भागीरथी में मिलती हैं। जलंगी के संगम के उपरांत ही भागीरथी हुगली नाम पाती है। इनके अलावा भागीरथी के बायें तट

पर ब्राह्मणी, मयूराक्षी, द्वारका, कोपाय, अजेय जैसी नदियों का पानी अमित रूप में मिल जाता है। जलगी भी पद्मा की एक शाखा है। पद्मा से छूटकर यह नडिया जिले में उत्तर की तरफ से प्रवेश करती है। घूम-घामकर, सर्पाकार चलती यह कृष्ण नगर पहुँचती है और पश्चिममुखी होकर नवद्वीप के पास मुझसे मिलती है। नवद्वीप—मेरे द्वारा प्रवाहित रेती-मिट्टी से बना टीला-प्रदेश है। द्वीप की भाँति पानी से घिरा रहने के कारण इसका नाम नवद्वीप पड़ा है।

नवद्वीप, नाडिया की मुख्य नगरी है। पहले यह विख्यात नगरी भी थी। आजकल पुराने खण्डहरों के अलावा उल्लेखनीय कुछ भी नहीं। पालवंश तथा सेनवंश के राज्यकाल में मन्दिरों, शिवालयों, राजमहलों से सुन्दर, सुरम्य, कोलाहलमय नगर था यह। महाराजा लक्ष्मणसेन को यह जगह इतनी प्रिय लगी कि उन्होंने यहाँ पर एक बड़े राजमहल का निर्माण कराया और अपने पिता की स्मृति पर जो तालाब खुदवाया, उसे आज भी देख पाएँगे। बालमेन अच्छे साहित्यकार और रसिक थे। ये जो ग्रन्थ अधूरा छोड़ गये थे, उसकी पूर्ति उनके पुत्र लक्ष्मणसेन ने की थी। ये भी अपने पिता के समान बड़े बुद्धिमान व साहित्य-प्रेमी थे। इनके दरबार में कई पण्डितों व ज्ञानियों कौ आदरपूर्ण स्थान मिला था।

नवद्वीप में ही गीत-गोविन्द के रचयिता कवि जयदेव निवास करते थे। धर्मशास्त्र के पण्डितों की भूमि भी थी यह। विद्यार्जन करने उन दिनों में दूर-दूर से लोग यहाँ आया करते थे। उन दिनों बङ्गाल में तान्त्रिक मत का बोलबाला था। तान्त्रिक मत का जन्म-स्थान भी यही है। हाँ, वैष्णव धर्म भी यहीं फूला-फला था।

मिदनापुर इस प्रान्त के दक्षिण-पश्चिम कोने पर है और यही सबसे बड़ा जिला है। इसका क्षेत्रफल १३,६१८ वर्ग किलोमीटर है। यह बड़ा उर्वर प्रदेश है, धान की खेती खूब होती है। समुद्रतटीय होने से नारियल के बागान बहुतायत में मिलते हैं।

हुगली कलकत्ता के निकट का छोटा-सा जिला है, जो मेरी और दामोदर द्वारा लायी हुई मिट्टी व रेत से बना है। इसका क्षेत्रफल ३१४९ वर्ग किलोमीटर है। २४ परगना भी एक बड़ा जिला है, जिसका विस्तार १३,६६८ वर्ग किलोमीटर है। यह दक्षिण-पूरवी कोने में स्थित है; जिसका अधिकांश भाग सुन्दरवन के घने जङ्गलों से आच्छादित है। इसी जिले में मेरी धाराएँ कई मुहानों पर समूह से मिलती हैं। हुगली को कलकत्ता की उपनगरी कहें तो उपयुक्त होगा। यहाँ कई कारखाने, और उद्योगशालाएँ हैं; छोटे-छोटे बन्दर-गाह भी हैं।

बङ्गाल में अद्भुत प्राकृतिक सौन्दर्य है। वह जल-सम्पत्ति से भी युक्त है। इसका भविष्य उज्ज्वल और महत्त्वपूर्ण है। बङ्गाल घनी आबादीवाला प्रदेश है। यद्यपि ब्रह्मपुत्र, मैं और सहायक नदियों द्वारा यह सिंचित है, फिर भी विभाजन के उपरान्त ब्रह्मपुत्र और मेरी एक शाखा पद्मा बांग्ला देश में चली गयी है। ऊपर भागीरथी और नीचे हुगली कही जाने वाली मेरी शाखा ही यहाँ की मुख्य नदियाँ हैं। इसकी सहायक नदियाँ हल्दी, दामोदर, मयूराक्षी, रूपनारायण, द्वारकेश्वर, कोपाई आदि हैं। इस उपजाऊ भूमि में धान और जूट की कृषि खूब होती है और यह कृषि-प्रधान है। सिंचाई के साधन भी पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा खूब विकसित हैं। खनिज सम्पत्ति की दृष्टि से भी यह धन्य है। लोहा, कोयला, ताँबा, मैंगनीज आदि प्रचुर मात्रा में मिलते हैं, जिसके कारण उद्योग-धन्धों का अच्छा विकास हुआ है। आसनसोल, गुल्दी, हीरापुर, बर्नपुर, हावड़ा, कलकत्ता औद्योगिक केन्द्र हैं। इनके अलावा कलकत्ता बन्दरगाह के द्वारा आयात-निर्यात भी खूब होता है।

पश्चिमी मैदानी प्रदेश में भागीरथी-हुगली बहती है। पूरबी उच्च पठार से उत्पन्न नदियाँ इसमें मिलने दौड़ी आती हैं। भागीरथी

वङ्गाल में मेरी पश्चिमोत्तर शाखा है। पहले मेरा पानी पूरे वेग से इसी में बह जाता था। यह दो सौ साल पहले की बात है। बाद में कितने ही परिवर्तन हुए। हम नदियाँ भी एक दूसरे के पानी से छोटी-छोटी उपनदियों का अपहरण कर लेती हैं। यहाँ बरामा बाँध है—जिसके कारण मेरा पानी भागीरथी में बहुत कम जाता है। इन उपनदियों का पानी लेकर ही वह सततवाहिनी बनी रहती है। आजकल बरामा बाँध पर सुधार का काम चल रहा है ताकि मेरा पानी पूर्ववत पूरे जोर से भागीरथी में जाए। नदियों द्वारा जो मिट्टी बहाकर लायी जाती है, वह या तो किनारे पर फेंकी जाती है या तलहटी में जम जाती है। इसलिए तटवर्ती प्रदेश ऊँचे व दलदली बन जाते हैं। नदियों के मुहाने भी ऐसे ही मिट्टी द्वारा पूरे गये हैं। मयूराक्षी और उसकी सहायक नदियाँ वर्षा के दिनों में पूरे जोर से बह आती हैं, और साथ लायी हुई मिट्टी को छोड़ जाती हैं। भागीरथी का किनारा, ऊँचा होने के कारण मयूराक्षी सीधे उससे मिल नहीं पाती, लगभग बत्तीस किलोमीटर तक भागीरथी समानान्तर बहकर आखिर जहाँ वह मार्ग निकाल पाती है, उमड़-घुमड़ कर भागीरथी को गले लगाती है।

हुगली की गहरी, नीली धारा दर्शकों को मोह लेती है। उसकी नीलिमा में निराला आकर्षण है। अरुण की लालिमा में मेरी सतह पर हुलसनृत्य करने वाली लहरियाँ, अपूर्व लावण्यमयी हैं। उजली आँख के चाँद के प्रकाश में मैं दुग्ध-फेन सा लहरा उठती हूँ। समुद्र देव से जहाँ-जहाँ मेरी धाराएँ मिलती हैं, उन मुहानों पर घने आरण्य छाये रहते हैं। सड़े-गले कीचड़-पुंज प्रदेशों की भी कमी नहीं है। छोटे-मोटे जलाशय, पोखर, तालाब, गढ्ढे, ऐसा सारा निचला प्रदेश, जलमय रहता है। घास-फूस भयंकर रूप से मंडित रहते हैं। वनचर निर्भयता से विचरते हैं। मेरे एक किनारे पर खड़े होने पर इसके दूसरे

किनारे नजर नहीं आते। लगभग ५१२ किलोमीटर बहती हुई मैं अपने प्रियतम सागर से मिलती हूँ।

इस यात्रा ही में दामोदर, मयूराक्षी, रूपनारायण आदि से मिलती हूँ। हुगली मेरे पश्चिम तट पर है। यहाँ पर होग्ला नामक झाड़ियाँ बड़ी मात्रा में पायी जाती हैं—जिसके कारण इसका 'हुगली' बंगाल का नाम पड़ा। जो भी हो, मैं गंगा नहीं, हुगली हूँ।

हुगली बंगाल का विशिष्ट जलमार्ग है। इसके द्वारा तटवर्ती व्यापार और अन्तरप्रांतीय व्यापार खूब चलता है। हावड़ा, बर्दवान डिवीजन में दक्षिण-पूरब में एक जिला है। इसके उत्तर में आराम बाग, श्रीरामपुर, पूरब में बराकपुर, असिपुर, डैम्पंड हार्बर, २४ परगना आदि हैं। दक्षिण में दमलुक सबडिवीजन, आरामबाग का एक हिस्सा, सीमा के रूप में है। पूरब और दक्षिण-पूरब में हुगली नदी, और पश्चिम और दक्षिण-पश्चिम में रूपनारायण नदी प्राकृतिक सीमा बनी है। हाँ, दामोदर नदी भी आ मिलती है। फलत: जल-समृद्धि और सम्पन्नता का क्या कहना?

रूपनारायण नदी मिदनापुर से आती है। शल्केश्वर और सिलाय जैसी दो नदियाँ मिलकर, रूपनारायण का नाम लेती हैं। इसका पाट चौड़ा होने पर भी उथली होने के कारण दलदल अधिक रहता है। इसी के किनारे पर ऐतिहासिक नगरी ताम्रलिप्ति थी, जिसका यश दूर-दूर तक फैला था। बौद्ध धर्म और विद्या का यह प्रधान केन्द्र था। यह मन्दिर अति प्राचीन है। रूपनारायण, दामोदर दोनों के द्वारा दोनों तटों की निचली जमीनों पर फेंका हुआ पानी और दोनों के द्वारा लाई हुई रेत व मिट्टी के कारण खतरनाक दलदल फैले रहते हैं। रूपनारायण और दामोदर जहाँ मुझसे मिलती हैं, उनके बीच में दस किलोमीटर विस्तार का भयंकर दलदली प्रदेश है। इसमें हरदम पानी रहता है और धसाँऊ भी है। नाविक और खलासी इस जगह के निकट आते ही घबरा जाते हैं।

यहाँ पर मुझे एक वात याद आती है। हुगली के इस जलमार्ग का, इस खरतनाक स्थान को 'जेम्स मेरी चांड्स' नाम भी है। इस नाम का उच्चारण करते कंपनी वालों के प्राण कांप उठते थे। बंगला में इसे 'जानमारी' भी कहेंगे अर्थात् 'प्राण लेवा'। एक वार मद्रास से ईख, लाल मिर्च, सागौन के काष्ठ आदि लेकर 'रायल जेम्स मेरी' नामक जहाज १६९४, सितम्बर महीने की २४वीं तारीख को हुगली की तरफ चल रहा था। इस जगह पर पहुँचते ही वह धँस गया। श्लभ धारा के कारण वह आगे बढ़ न पाया। उल्टे पूरा का पूरा डूब गया, पानी में नहीं दलदल में। जहाज में जितने भी खलासी रहे, उनमें एक भी जिन्दा न वच पाया।

इस जलमार्ग में अधिकांश ऐसे खतरे आ जाते हैं। उतार-चढ़ाव, बालू के टीले, धारा के छिछलेपन के कारण जलयात्रा दुष्कर हो जाती है। फिर भी हुगली में कलकत्ता से सुन्दरवन तक २४० किलोमीटर तक स्टीमर चलते हैं। भागीरथी में भी २९० किलोमीटर तक नौका-गमन होता रहता है।

हुगली में भी एक त्रिवेणी है। प्रयाग में तीन धाराएँ मिलती हैं, पर यहाँ तीन धाराएँ बँटती हैं। इसलिए इसे 'मुक्तवेणी' कहते हैं। कलकत्ता से ५७ किलोमीटर उत्तर की तरफ यह त्रिवेणी है। यहाँ पर भागीरथी हुगली से अलग होकर ९ किलोमीटर दक्षिण में स्थित शंकरेली नामक स्थान पर फिर से हुगली में मिल जाती थी। भागीरथी दक्षिण की तरफ, सरस्वती पश्चिम की तरफ, सजरम्ना पूरब की तरफ पृथक होती थीं। आजकल सरस्वती के नाम पर एक पतली धारा है जिसका हुगली से कोई मुख्य सम्बन्ध नहीं। हाँ, यह हुगली में अवश्य मिलती है मगर वैभवहीन। इसकी शुष्क घाटी कभी व्यापार का प्रमुख केन्द्र थी तथा सरस्वती प्रसिद्ध जलमार्ग थी। जो हो—त्रिवेणी' का महत्त्व घटा भी नहीं है। पर्व के दिनों और उत्त-

रायण पुण्य काल में यात्रीगण यहाँ पर स्नान करने आते हैं। यहाँ पर कई मन्दिर भी हैं।

दामोदर नदी भी पहले कलकत्ता से ५५ किलोमीटर उत्तर की तरफ हुगली में आ मिलती थी। आजकल कलकता से ५५ किलोमीटर दक्षिण में पालदा के निकट हुगली से मिलती है। दामोदर की कुल लम्बाई ६२५ किलोमीटर है। चंचल और आक्रोशमयी दामोदर 'पालामउ' जिले में खम्भारपेट पहाड़ पर लगभग ९०० मीटर की ऊँचाई से उत्पन्न होती है। अपने उद्गम स्थान से लगभग २४० किलोमीटर तक छोटानागपुर के ऊबड़-खाबड़ पठारी भूभाग में प्रवाहित होकर पश्चिम बंगाल के डेलटा प्रदेश में प्रवेश करती है और हुगली में मिलती है। शुरू में तंग घाटी से होकर बहती इसकी दो पहाड़ी धाराएँ उन्मत हाथी की भाँति उमड़ आती हैं। लगभग ४२ किलोमीटर तक पहाड़ी नदी के रूप में आती ये धाराएँ हजारीबाग के निकट एक होकर दामोदर नदी का नाम लेती हैं। इस जिले में पूरब की तरफ से १५० किलोमीटर बहती है यह। यहाँ पर कूनूर, जमुनिया जैसी सहायक नदियाँ आ मिलती हैं। आगे इसका प्रवेश मानभूम जिले में होता है। यहीं पर विहार की सीमा खत्म हो जाती है। आगे बंगाल में प्रवेश करने के पहले इसकी वड़ी उपनदी बरालकर उत्तर की तरफ से आकर बर्दवान जिले के निकट दामोदर को आलिंगन में भर लेती है। तभी दामोदर का आवेश शांत होता है। मैथान से थोड़ी दूर पर दक्षिण-पूरब में इनका संगम स्थान है। दामोदर यहाँ से दक्षिण-पूरब की तरफ मुड़कर आसनसोल को बाँकुरा से विभाजित कर देती है। आवेश कम होने पर इसका आकार विशाल हो जाता है और नौकागमन के योग्य वन जाता है। बर्दवान शहर से आगे बहती दामोदर सीधे दायीं तरफ मुड़कर, दक्षिण की तरफ बहने लगती है। हुगली जिले में प्रवेश करने के पहले यह एक डेल्टा प्रदेश को रूप दे देती है। रानीगंज, जमालपुर, सलीमाबाद आदि शहर

इसके किनारे पर हैं। पुरानी धाराएँ जो शुष्क पड़ जाती हैं, 'काना' कहलाती हैं। काना दामोदर और दामोदर के संगम पर सलीमाबाद शहर है। महानन्दा भी इसकी एक प्रधान उपनदी है।

बिहार में यह नदी जनजीवन के अधिक काम नहीं आती। इसकी अपार जलराशि और बाढ़ का पानी लाभ से अधिक हानि पहुँचाता है और बेकार वह जाता है। इससे लोग आतंकित रहते हैं और इसे 'बिहार का अभिशाप' भी कहा करते हैं। प्रतिवर्ष इसकी बाढ़ से होने वाला नाश और हानि अकथनीय है। समुद्रतल से ५४२ मीटर ऊँचाई से निकल आती इस नदी का जल-ग्रहण क्षेत्र भी समृद्ध है जिसके कारण अक्सर बाढ़ों का प्रकोप हो जाता है। यह धारा किनारों की भूमि का क्षरण करती है। कंकड़, पत्थर, बालू और कीचड़ को भी बहा लाती है। भूमि इतने पानी को सोख नहीं पाती है। इसीलिए वर्षा के दिनों में बिहार और बंगाल में हाहाकार मच जाता है। १७७० ई० में बाढ़ के प्रकोप में सारा बर्दवान डूब गया। बिहार में इसकी गति तेज है। लेकिन बंगाल में आते ही शिथिल हो जाती है। इसकी आसुरी लीलाओं पर कितना कहूँ ? पिछले सौ वर्षों में बीसों बार भयंकर नाशकारी बाढ़ का प्रकोप हुआ है। दो-तीन महीनों तक खेत जलमग्न रह गये। घर गिर गये। गाँव के गाँव बह गये। १८२३, १८५५, और १९३४ ई० की बाढ़ में कलकत्ता जाने का मार्ग ही बंद हो गया। इसे 'बिहार का शोक' न कहें तो क्या कहें ?

हाँ, पहले यह स्वतंत्र नहीं थी। सीधे सागर में जा मिलती थी। इसने न जाने कितनी बार अपना मार्ग बदला। आजकल हुगली में मुझसे मिलती है। हुगली पहले सप्तग्राम के अंतर्गत एक मामूली कस्बा था। यह तो अरण्य प्रदेश था। केवल सप्तग्राम मुख्य नगरी बनी थी। मेरे तट पर नगरों का आबाद होना, श्री सम्पन्न व कोला-

हलमय रहना, कालक्रम मलिन पड़ जाना मामूली बात है। जीवन की उन्नति व अवनति मुझे चौंकाते नहीं हैं, क्योंकि मेरे तटवर्ती प्रदेश का नगरों के भाग्य निर्माण में मेरा भी तो हाथ है ? मेरा मार्ग जब कभी बदलता है, भारी परिवर्तन अनिवार्य है। मेरे तट पर 'गौड' राजधानी के रूप में कितनी विख्यात रही ? हजारों वर्षों की उस प्राचीन नगरी को मैंने ही अपने हाथ से मिटा दिया था। वैसे ही नवद्वीप, मुर्शिदाबाद आदि भी महत्वहीन हो गये।

सप्तग्राम मेरे बाएँ किनारे पर था। हाँ, उन दिनों यह प्रसिद्ध बंदरगाह भी था। 'विडोर' की हाट में खूब व्यापार होता था। माल खरीदने, बेचने तथा चण्डी देवी की पूजा करने लोगों की भीड़ दिन-रात लगी रहती थी। विदेशी चीजें सप्तग्राम में बिक्री के लिए आ जाती थीं। हाँ.... उन दिनों यह जलमार्ग इतना अच्छा रहा कि जहाज सीधे यहाँ तक आ पहुँचते थे। १६वीं सदी तक यह जलमार्ग यातायात व वाणिज्य के लिए बड़ा उपयोगी रहा था। कोलाहलमय इस वर नगरी पर एकाएक दुर्भाग्य के काले बादल छा गये।

सरस्वती व्यापारिक जलमार्ग थी। एकाएक उसने अपना मार्ग बदल लिया। सप्तग्राम के किनारों पर जो प्रवाह लहराता था, वह एकदम सूख गया। छिछली धारा, दलदल और एक रेत के ढर लग गये। धँसाऊ दलदल का खतरा भी रहा। बस...जो जहाज सप्तग्राम तक आते थे, अब न आ पाये। बन्दरगाह बरबाद हो गया और सप्त-ग्राम की पूछ न रही। जलमार्ग बन्द हो गया। जगमगाता द्वीप टिम-टिमाने लग गया। आज टूटे-फूटे घर और झोपड़ियों के अलावा कुछ नजर नहीं आता। सप्तग्राम में अंधकार छा गया, मगर हुगली का भाग्य-द्वार खुल गया।

हुगली अब दक्षिण वङ्गाल का प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र बन गया। मुगलों की छावनी यहीं रही। १५७० ई० में पुर्तगीज व्यापारी यहाँ आये। १६३२ ई० में मुगलों की मुख्य नगरी बन गयी तो हुगली की

प्रसिद्धि व कीर्ति चारों तरफ फल गयी। यहाँ के इमामबाड़ों की स्थापत्य कला पर विस्मय होता है। प्रधान द्वार पर घंटाघर २४ किलोमीटर ऊँचा है। इसके ऊपर चढ़कर देखें तो चारों तरफ का प्राकृतिक दृश्य दिल को लुभा लेता है। १७वीं सदी में डचों ने मेरे तट पर एक कारखाना खड़ा किया। बस, अंग्रेओं ने भी उनका अनुकरण करना आरम्भ कर दिया।

विदेशों से आये व्यापारी मेरे तटवर्ती प्रदेशों में दूर-दूर तक फैलते गये। कालीगढ़, सुतोनाटी, गोविंदपुर, चित्पुर, सुलेखा जैसें कई गाँवों का भाग्य चमकने लगा। अंग्रेजों को हुगली वहुत पसन्द आयी थी। वारेन हेस्टिंग्स और उसकी पत्नी मरियम यहीं रहा करते थे। अंग्रेजों के आने के पहले यूरोप से आने वाले लोगों में प्रथम थे पुर्तगीज। चटगाँव उनका प्रधान अड्डा था। यहाँ से वे सारे बङ्गाल में फैल गये। पुर्तगीजों के जहाज सुतोनाटी में आ ठहरते थे। फिर वे सप्तग्राम में आ बसे क्योंकि वहाँ देश-विदेशों का माल आता था। सरस्वती के सूख जाने के कारण वे हुगली में आ गये, लेकिन वाद में व्यापार वाणिज्य लूट-खसोट का काम उन्हें लाभदायक रहा और उनमें लुटेरे और डाकू बनकर आतंक मचाने लग गये। चटगाँव भी चोर, डाकू, जलदस्यु, अपराधियों का अड्डा हो गया।

पुर्तगीज व्यापारी सैनिक भी थे, इसलिए बङ्गाल के जमींदार, जागीरदारों के दरबार में, सेना में उन्होंने स्थान पा लिया था। इनके साथ ईसाई धर्म प्रचारक भी आये। समुद्र पार से आये इन पादरियों को देखकर मैं विस्मय में डूब जाती थी। अपने धर्म प्रचार के लिए इन्होंने कम अन्याय न किया था। इस विस्तृत विशाल भारत भूमि में कितने ही ऋषि, मुनि, तपस्वी, धर्माचार्य और भक्तों को मैंने देखा है। आर्यों के जमाने से लेकर आज तक हिन्दू धर्म का प्रचार करने, उसकी महत्ता को लोगों को समझाने में जिन्होंने अपना सारा जीवन

लगा दिया उन महान लोगों का दर्शन कर मैं पुलकित हुई हूँ। इस बङ्ग भूमि में चैतन्य महाप्रभु के अमृत गानों को, जयदेव के मधुर गीतों को श्रवण करते समय मैं आत्मविस्मृत हो जाया करती थी। मैथिल कोकिल विद्यापति के भक्ति भरे गीतों से मेरा हृदय पानी-पानी हो जाता। वङ्ग कवि विप्रदास को मैं कभी भूल न सकूँगी। जब तक यह मिट्टी है ··लहराता पानी अजस्र गति से बहता रहेगा···इन महान आत्माओं को कोई भूल न पाएगा। लेकिन धर्म प्रचार के लिए अपना स्वदेश छोड़, समुद्र पार कर आने वाले इन पुर्तगीज धर्म प्रचारकों को देखते ही मैं अवाक् रह गयी। धार्मिक कट्टरता ने इनको कैसा क्रूर और अन्धा बना दिया था ? इस देश में बाहर से मुसलमान भी अपने साथ अपना धर्म ले आए। दोनों ने तलवार की नोक पर धर्म का प्रचार किया और एक हद तक सफल भी हुए।

मेरी आँखें खुलीं। एक महत्त्वपूर्ण सच्चाई का मुझे बोध हुआ। जब कभी धर्म और राजनीति एक हो जाती है और राजनीति धर्मांधता के नशे में चूर होकर शक्तिहीन हो जाती है, उसी दिन देश की शांति नष्ट हो जाती है। जनजीवन में भारी बवंडर उठ खड़ा हो जाता है।

धर्माचार्यों को भी धन का लालच होता है। इसे मैंने इन पादरियों में ही पहले पहल देखा। एक हाथ में पुनीत क्रास को लिए जो धर्म का प्रचार कर रहे थे, वे दूसरे हाथ से जहाँ तक हो सका, धन-दौलत को लूटने लगे। सोने-चाँदी से इनकी जेबें भर गयीं, मगर इनका हृदय उन्नत विचारों से, ऊँची धर्म-भावनाओं से नहीं भरा था। ईसाई धर्म के नाम पर इन्होंने बङ्ग भूमि में जो अत्याचार किया था, उसका वर्णन करूँ तो वह लम्बी कथा हो जाएगी। पुर्तगीज व्यापारियों का वेष धारण किये जो जलदस्यु आये, उनके अत्याचारों की सीमा न रही। बङ्ग जनता की सुख-शांति को उन्होंने नष्ट कर दिया। यहाँ

वे सीधी सरल जनता को फुसलाकर गुलाम बना लेते और विदेशों में ले जाकर बेचा करते थे। उनका यह गुलामी का धंधा भी खूब चला। वे अबोध बच्चे और स्त्रियों को अपहृत कर ले जाते और उन्हें ईसाई बना लेते।

तब स्त्रियाँ घर की देहली छोड़कर बाहर आने का साहस न करतीं। खासकर सुन्दर स्त्रियों को देखते ही पुर्तगीज पागल हो जाते। सारा बङ्गाल इन पुर्तगीज जलदस्युओं के अत्याचारों से वीरान हो गया। इन्होंने सुन्दरवन के आंचलिक प्रदेशों पर लूटपाट मचा दी। गाँवों में आग लगा दी। हुगली के किनारे पर गोदाम बनाने के लिए अकबर ने जो अनुमति दी, उसका इन लोगों ने दुरुपयोग कर दिया। मिट्टी का किला बनवा लिया। बङ्ग की सुख-समृद्धि, मेरे सुगम जलमार्ग ने उनके लालच में घी का काम किया। इनके दुष्कृत्यों पर शाहजहाँ क्रोधित हो उठे। हाँ, पुर्तगीज व्यापार और वाणिज्य के सर्वनाश का कारण ये जलदस्यु ही थे। शाहजहाँ को इनसे घृणा थी। उसने सेनापति कासिम खाँ को बड़ी सेना के साथ भिजवाया। कासिम ने इनको निर्मूल कर दिया। सारी बस्ती, मिट्टी के किले गिरा दिये गये। अनेक मारे गये। बाकी को कैदी बनाकर आगरा भेजा गया। मेरे तट पर एक गिरजा ही शेष रहा। हाँ, पुर्तगीजों के व्यापार का अन्त हो गया। मगर लुटेरों के रूप में बहुत समय तक यहाँ के जङ्गलों में छिपकर रहा करते थे। हाँ, शाइस्तखाँ ने अन्त में पूरी तरह मिटा दिया।

पुर्तगीजों के बाद डच आये। मुगल सेनापति की दृष्टि में रहते हुए व्यापार-व्यवहार खतरनाक था। इसे पुर्तगीजों के अनुभवों से उन्होंने जान लिया। उन दिनों हुगली पर मुगलों की छावनी थी। इसलिए उन्होंने चुंचुडा को अपना केन्द्र बना लिया और बहुत साव-धान रहे। वाणिज्य में डच वालों को मालामाल होते देख अंग्रेजों का

मन भी ललचाया। उन दिनों वङ्ग का रेशम, चीनी, चावलऔर मसलिन की धूम सारे संसार में फैल गयी थी। अपनी साम्राज्ञी की अनुमति लेकर व्यापारियों का एक दल यहाँ चला आया। इस देश में आकर वाणिज्य के क्षेत्र पर अपना एकाधिकार स्थापित करना ही उनका उद्‌देश्य था। अपनी कम्पनी को इन्होंने 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' का नाम दिया था। लगभग तीन लाख रुपयों का मूलधन और चार जहाज लेकर उन्होंने १९०१ ई० में यहाँ पर अपना कदम रखा।

भाग्य देवता इनके पक्ष में था। बङ्गाल के छोटे-मोटे जागीरदार, जमींदार और धनियों ने इनकी सहायता की। इन व्यापारियों का माल लेने में होड़ सी लग गयी। १६५० ई० में अंग्रेजों ने हुगली में अपने एक कोठी बना ली। उस समय शाहजहाँ का मँझला बेटा शूजा वङ्गाल का गवर्नर था। राजमहल उसकी राजधानी थी। एक बार शाहजहाँ की बेटी जहाँनारा बीमार हो गयी। गेब्रियल ब्राउन नामक एक अंग्रेज डाक्टर ने उसकी चितिकसा की। पुर्तगीजों के व्यवहारों से मुगल बादशाहों के मन में विदेशियों से घृणा थी। पर इस घटना के बाद अंग्रेजों के प्रति सद्‌भावना पैदा हो गयी। सालाना ३००० रुपया देकर सारे बङ्गाल में व्यापार करने का अधिकार इनको मिल गया। लेकिन औरंगजेब इनसे सहज भाव न रखता था।

अंग्रेज बड़े चतुर व व्यवहारकुशल थे। प्रत्यक्ष तौर पर वे आदर दिखाते, लेकिन छिपे तौर पर यहाँ के धनियों, छोटे-छोटे रियासती राजाओं से मेल-जोल वढ़ाते। शाइस्तखाँ जब वङ्गाल का नवाब बना तो इनके दुर्दिन आरम्भ हो गये। नवाबों के ठाठ-बाट के खर्च बेहद बढ़ गये। धन की आवश्यकता वढ़ी। फिर पूछना क्या ?

बङ्ग के भाग्य में शायद सुख न बदा था। नवावों के शासनकाल में भी उन्हें असीम कष्ट झेलने पड़े। शाइस्तखाँ की धन-लालसा ने

कम्पनी को हुगली से भगा दिया। उस समय व्यापारियों के पास न सेना थी, न अस्त्र था, अनावश्यक नालिश, मार-पीट हुआ करती। चारनाक बेचारा क्या करता? तलवार के बल के बिना व्यापार करना असम्भव था। उसने किला बनवा लेना चाहा। हुगली में सैनिकों के आते ही नवाब ने कह दिया कि यहाँ पर व्यापार करने का अधिकार दिया जाएगा।

शाइस्तखाँ और कम्पनी में बहुत दिनों की शत्रुता थी। अब वह धू-धू कर जल उठी। दोनों तरफ की सेना में मुठभेड़ हुई। शाइस्ता खाँ ने शपथ ली—'ये फिरंगी जहाँ से आये हैं, उसी समुद्र में इनको भगाये बिना आराम की साँस न लूँगा।' यह सुनते ही चारनाक थर-थर काँप उठा। सोचा, हुगली को छोड़कर चला जाना ही बुद्धिमानी है। रातोंरात अंग्रेज यहाँ से निकल भागे। चलते-चलते जो गाँव आया, वह सुतोनाटी था। वहीं पर सब उतर गये। वह क्रिसमस का दिन था। सबने क्रिसमस का त्यौहार मनाया। मुगल सेना चुप न रही। उनका पीछा किया। चारनाक और अन्य व्यापारी इधर-उधर भटकते रहे, कहीं भी टिक न पाये। वङ्ग की हरी-भरी धरती पर अपना आधिपत्य जमायें, यही उनकी सबसे बड़ी समस्या थी।

चारनाक वड़ा बुद्धिमान था। राजनीति में इतना चतुर था कि सारे भारत में विलायती झण्डा फहराने का सपना देखता था। इस मिट्टी की संस्कृति व संस्कार ने उसे मोह लिया था ··हाँ, एक युवती जो जबरदस्ती से सती बनायी जा रही थी, उसका उद्धार करके उससे उसने शादी भी कर ली।

एक बात मेरे स्मृति-पटल में अमिट रह गयी···१६९० की बात है। गर्मी के दिन थे। चारनाक अपने साथियों के साथ सुतोनाटी घाट पर आ उतरा। जहाज से उतरते ही सबसे पहले उसने अपने झण्डे को फहराया। गाँव के लोग इन विचित्र विदेशियों और झंडे को

देखते रहे। किसी ने प्रतिरोध न किया। ओह! किसी ने सोचा न होगा कि यह झंडा एक-न-एक दिन सारे भारतवर्ष में फहरा उठेगा।

इस गरिमामय देश की स्वतन्त्रता का अपहरण कर, परतंत्रता के बन्धन में जिन्होंने बाँध लिया, उसका बीज-वपन उस दिन चारनाक ने किया था। खुले मैदान में धूप और वर्षा से बचने के लिए माटी की कुटिया बनायी गयी। चारनाक ने एक वट वृक्ष की छाया में बैठे-बैठे अपना काम चलाया। व्यापारी यहाँ आकर खरीद-बिक्री करते थे। मोल-तोल, समझौते, सब कुछ खुले आसमान के नीचे चलता। फिर भी चारनाक मन-ही-मन दुर्ग बनाने के लिए उपर्युक्त जगह ढूँढ़ रहा था।

मेरे बायें किनारे को देखते वक्त लगता है, नदी का प्रवाह किस तरह अपने अबाध प्रवाह व बाढ़ से, किनारों को काटता जा रहा है, मिट्टी और रेत को कैसे बहा लाता है, जिससे तटवर्ती प्रदेशों का नाश होता है। दायें किनारे की तरफ नजर डालूँ तो विस्मय करने लगती हूँ कि मानव अपनी बुद्धि, प्रतिभा व परिश्रम से अजेय प्रकृति को कैसे वश में लाता है? प्राकृतिक शक्तियों से निरंतर संघर्ष करता हुआ मानव समाज का उत्थान करनेवाला मनुष्य महत्वपूर्ण अनुसंधान कैसे करता है!

संध्या की वेला में यहाँ का दृश्य बड़ा मनोरम होता है। मेरे दोनों तटों पर जूट के कारखाने, फैक्टरी, मिलें कतारों में खड़ी हैं। उन चिमनियों से उफनता धुएँ का मंडल पंखदार सर्पों सा आकाश में उड़ता दीख पड़ेगा। नावें, जहाज, मोटरबोट, स्टीमलांच, तीव्र गति से मेरी धारा को चीरती हुई चलती रहेंगी। ढेर के ढेर सन, जूट व मालों को लाद लेना, फिर उतारना··· ओह, कितनी व्यस्तता है यहाँ। भारी हलचल और कोलाहल हरदम मचा रहता है।

मेरे धारा पर आप बोटों में सैर करें तो बड़ा मजा आएगा। लुभावने दृश्य चित्ताकर्षक रहेंगे। गार्डनरीच, नैपियर रोड, न्यूस-टिराण्ड रोड के जरिये गुजरना पड़ेगा। यहाँ पर कई सुन्दर घाट हैं। शीतल धारा को छूती हुई चलती मंद बयार आपके शरीर को क्या, मन में भी आनन्ददायक सिहरन व स्फूर्ति भर देगी। हुगली में मेरा प्रवाह दोनों कूलों को छूता बहता है। मेरा सुहावना पाट भी काफी बड़ा है। छोटी-मोटी किश्तियों से लेकर बड़े बड़े जहाजों तक बड़े उल्लास से तैरते फिरते रहते हैं।

हुगली को पार कर मैं कलकत्ता के निकट आती हूँ। दृश्य बदलते हैं।

दक्षिण में बेहाला बंदरो। उत्तर में दक्षिणेश्वर। बीच में काली क्षेत्र है। हाँ, देवी कालिका, नखुलेश्वर के साथ आनन्द से विराजमान है। असंख्य इस भक्त देवी के उपासक हैं। आजकल तो रामकृष्ण परम हंस के अनुयायी महाकाली कालिका को अपना आराध्य मान रहे हैं। यहाँ पर देवी भवधारिणी और अन्य मन्दिर भी हैं। कृष्ण का भी एक सुन्दर मंदिर है। १८५५ ई० में रानी रासमणी नामक एक महिला ने इस आलय का पुनर्निर्माण करके देवी की प्रतिष्ठा की थी। हाँ… इस देवालय को छूती हुई सी मेरी धारा लहरा रही है। यह जगह कितनी स्पृहणीय और पवित्र है। यहाँ की देवी त्रिनेत्रधारिणी है। लाल वस्त्र, खुले बाल, नरमुंडों की माला धारण किये कालिका की भव्य मूर्ति का दर्शन करनेवाले भक्त आत्मविस्मृत हो जाते हैं। देवी कालिका बंगाल की उपास्य देवी हैं। यहाँ पर शक्ति-पूजा प्रच-लित है। चंडीदास, कमलकांता, रामप्रसाद आदि भक्त कविगण, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद जैसे महाज्ञानी भी इसी देवी के अनन्य भक्त थे।

जहाँ पर चारनाक ठहरा था, वह स्थान हुगली से ३७ किलोमीटर

था। यही आज कलकत्ता शहर का पश्चिमी हिस्सा है। कंपनी के लिए जहाँ पर लोग ठहरते थे, उसका विकास खूब होता रहा। कालीगढ, सुतोनाटी, गोविन्दपुर, तक यह फैलता गया। ये तीनों छोटे गाँव मिलकर कलकत्ता शहर बना। आज तो आसपास के जंगली प्रदेश भी कलकत्ता शहर में बदल गये हैं। झाड़-झंखाड़ और बाँसों के झुरमुट मिटा दिये गये। पहले कीचड़ भरे जलाशय, सेवार भरे पोखर, दलदल से युक्त भूमि पर घास-फूस और कंटीली झाड़ियाँ मनमाने ढंग से उग आयी थीं। ये घने वन-प्रदेश चोर, डाकू, व लुटेरों का निवास स्थान थे। हिंस्र पशु ही नहीं, हिंस्र मनुष्य भी यहाँ छिपकर रहते थे। फिर भी यात्रीगण दलदल में इन जंगलों से होकर देवी का दर्शन करने आते रहेंगे। उनकी भक्ति व श्रद्धा पर मैं गद्‌गद् हो जाती थी।

मेरा पश्चिमी तट पुनीत माना जाता था। वाराणसी के बराबर उसका महत्व था। उच्च कुल के, सुसंस्कृत लोग मेरे पश्चिमी तट पर निवास करते थे। पूर्वी किनारा तो दलदली प्रदेश था। इसका नाम था 'सुंदरवन'। हाँ, यहाँ पर जो वृक्ष बहुतायत में मिलते हैं, उनका नाम 'सुंदर' था, शायद इसी से 'सुंदर वन' का नाम पड़ा होगा। उन दिनों में यहाँ बस्तियाँ कहाँ थीं; मेहनत-मजदूरी करनेवाले इधर-उधर रहा करते थे। इस प्रदेश को मनुष्यों के रहने लायक बनानेवाले अंग्रेज थे। जंगलों को काटकर, दलदल को दूर करके, गढ़ों को भरकर, रास्ता बनाकर, उन्होंने ही इसे शहर का रूप दिया। हाँ···अंग्रेजों में एक विशिष्ट गुण था, वे बड़े मेहनती और चुस्त थे। जो कार्य लेते, उसे पूरा किये बिना न छोड़ते, इनके आने के पहले आसपास के गाँवों के लोग मुझे पार करके आते थे, जो कम खतरे का काम नहीं था। मुहल्ले भी दूर-दूर पड़ते थे।

अंग्रेजों ने इस प्रदेश की भौगोलिक स्थिति पर ध्यान दिया। पूरब की तरफ घने जंगल थे, निम्नभूमि थी। साल्टलेक को पारकर आना

मामूली बात नहीं। पश्चिमी तरफ में सीमा-रेखा बनी थी। उन्हें यह भी मालूम था कि मुझे पार करके आने का साहस मुगलों में कम है। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए उन्होंने फोर्ट विलियम किले की नींव डाली। यहाँ की जमीन भी ऊँची थी। बिलकुल माटी का मामूली किला। इसी को बाद में क्लाइव ने विशाल और पक्का बनवाया। १७७३ई० में माटी का किला खड़ा किया था न? उस समय बंगाल का गवर्नर था इब्राहीम, जो इनसे मित्रता का भाव रखता था। नवाब बड़ा अच्छा और धार्मिक था। व्यापार करने जो आये हैं, एक दिन यहाँ के राजा बनने की इच्छा करेंगे, इसकी उसे आशंका न थी। लेकिन दिल्ली के बादशाह औरङ्गजेब ने शायद इसे परख लिया था। नवाब ने किले बनाने की अनुमति दे दी, यह जानते ही वह बौखला उठा। इब्राहीम को गद्दी से उतारकर उसके पोते अजीमुद्दीन को गवर्नर बना दिया।

अंग्रेज बड़े चतुर थे। वे हिम्मती भी थे। किसी तरह उन्होंने १६,००० रुपये देकर सुतोनाटी, कालीगढ़, गोविन्दपुर आदि तीनों ग्रामों को खरीदने की अनुमति ले ली। ये गाँव सावर्ण चौधरियों के थे। उन्होंने इन्हें अंग्रेजों को बेच दिया। किला पक्का बनाया गया। तीनों गाँव शहर बनने लगे। वाणिज्य का खूब बोलबाला रहा। वणिक लोग खरीद-बिक्री के लिए यहीं आने लगे। किसी ने मानो जादू फूँक दिया। धड़ाधड़ मकान, महल, बाजार, पथ, सुन्दर ढंग से उठ खड़े हो गये। न राजा था, न सेना, मगर कलकत्ता श्री-सम्पन्न रहा। कहने को तीन ही ग्राम थे, फिर भी कलकत्ता इतना व्यवस्थित और समृद्ध हुआ कि उसका वैभव देखकर नवाब जल उठा।

एक दिन तूफान चला। भयंकर वर्षा हुई। बाढ़ ने उत्पात मचाना शुरू कर दिया। किनारों को तोड़कर मैं बह चली। और अंग्रेजों का बना यह शहर बह गया। मैं तो लगभग बारह मीटर

ऊपर उठ गयी। पक्के घर ही ढह गये तो मिट्टी का क्या कहना! रात भर यही हाल रहा। सवेरे सूर्य के प्रकाश में इस सुंदर नगरी की बरबादी देखकर दिल दुखने लगा। अंग्रेजों ने तब तक चितपुर, सिमले, मिर्जापुर, चौरंगी जैसे गाँवों को खरीद लिया था। योग्य शासक के अभाव में बंगाल का बुरा हाल था। उधर दिल्ली में औरंगजेब की मृत्यु हो चुकी थी। चारों तरफ अराजकता फैल गयी। औरंगजेब के वारिसों में शासन की बागडोर थामने की शक्ति कहाँ थी?

हाँ! अलीवर्दी खाँ बंगाल की गद्दी पर बैठा। छल, प्रपंच और विश्वासघात ने उसे नवाब बनने में सहायता दी। अलीवर्दी खाँ राजनीति में बड़ा चतुर था; पर अन्य नवाबों की तरह वह विलासी न था। उसका व्यक्तिगत जीवन शांत था। नवाबों के जनानाखाने ठसाठस भरे होते थे; मगर अलीवर्दी की एक ही बेगम थी। अलीवर्दी लगभग पंद्रह वर्षों तक राज्य करता रहा। उसने मनमानी करनेवाले जमींदारों, जागीरदारों को अपने अधीन कर लूट-खसोट को बंद कर दिया। उसने डाकुओं के उपद्रव को भी मिटा दिया। उसके कोई पुत्र नहीं था, तीन बेटियाँ ही थीं। सबसे छोटी बेटी अमीना का पुत्र सिराज अलीवर्दी का प्यारा पोता था। उसने बड़े लाड़-प्यार से सिराज को पाला था। वह चाहता था कि वही उसका वारिस बने। सिराज स्वभाव से उद्दण्ड था। दादा के लाड़ ने उसे धूर्त बना दिया था। उसके कुकृत्यों की भी एक लंबी कहानी है। लेकिन दादा की आँखों में पोते के दुर्गुण खटकते नहीं। उसने उसे लाड़ से पाला था, मगर एक शासक के योग्य शिक्षाएँ उसे नहीं दीं। न अस्त्र-शस्त्र की विद्या, न शासन संबंधी बातें उसे सिखायीं।

भोग-विलास और दौलत ने सिराज को बुरी आदतों का गुलाम बना दिया। स्वभाव से जो अच्छे गुण थे, वे भी सहवास-दोष के

कारण बदल गये। उसका नाम सुनते ही लोग काँप उठते। बचपन से सिराज को अंग्रेजों से घृणा थी। अलीवर्दी ख़ाँ ने भी उसे सावधान किया था कि वह अंग्रेजों के प्रति कभी उदार न बने।

लाश पर मंडराती चीलों की भाँति कंपनीवाले ताक में बैठे थे—जो भी हाथ लगता, निगल लेते थे। व्यापार के अलावा हर व्यक्ति निजी तौर पर धन संग्रह करने में लगा था। कंपनीवालों के अन्याय-पूर्ण व्यवहारों से अलीवर्दी तंग आ गया था। नित्य नयी-नयी जागीर ख़रीदने के अलावा सुरक्षा के नाम पर उन्हें अपनी सैनिक शक्ति का आतंक बढ़ाते देखकर वह चिंतित भी हुआ। उनका सैन्य-बल बढ़ गया, किलों की संख्या बढ़ती गयी…इतने से भी वे चुप न रहे, अमीर-उमराओं से मिलकर नवाब के विरुद्ध षड्यंत्र करने में उतर गये। कारखानों के नाम पर अस्त्रों के गोदाम बनते गये।

उदास मन से यह सब देखती मैं अक्सर भारतवासियों की आपसी फूट पर रोया करती थी। भाई-भाई को देखकर जलनेवाले, न जाने क्यों इन फिरंगियों के प्रति स्नेह व उदारता दिखाते रहे। यह समझ में नहीं आया। स्वार्थ, संकीर्ण दृष्टिकोण, आपसी ईर्ष्या और स्पर्धा की भावना ने इन लोगों को गुलाम बना दिया। इन अंग्रेजों की फ्रांसीसियों से दुश्मनी थी। दोनों में प्रतिस्पर्धा थी। यूँ तो दोनों ही व्यापार करने आये थे, और इस हरी-भरी धरती पर कदम रखते ही अपना राज्य कायम करने की लोलुपता में फँस गये। दोनों दल-बल के साथ एक-दूसरे को इस मिट्टी से भगाने में लग गये थे। एक वार, अंग्रेजों ने चन्द्रनगर को अपने कब्जे में ले लिया। फ्रांसीसी घबरा उठे। उनका आर्तनाद सुनते ही उनकी सहायता करने कौन दौड़ा आया—जानते हैं? सिराज ही सेना लेकर आया और उन्हें अपनी छाया में बसेरा दिया। गद्दी पर बैठने के बाद सिराज में भारी परिवर्तन आ गया था। वह बड़ा नेक और न्यायी बना रहा। उसने वाट्सन की माँगों की परवाह न की; उलटे उनकी गलतियाँ गिनायीं।

एक बार सिराज ने सारी सेना के साथ फोर्ट विलियम किले पर धावा बोल दिया। यह तो केवल नाम के लिए किला था; सुरक्षा का कोई साधन, कोई अस्त्र-शस्त्र नहीं था। नवाब सेना लेकर आया है, यह समाचार पाते ही अंग्रेज घबरा उठे। मोर्चा लेने का साहस उनमें न रहा। वे नशे में भी चूर थे। फिर क्या था, विजय भी सिराज की रही। हाय ! उस दिन की खलबली में कितने ही अंग्रेज स्त्री, पुरुष और बच्चे मुझमें डूब मरे। यहाँ पर आपको एक घटना की सच्चाई बताना चाहती हूँ। "कलकत्ता की काली कोठरी" की बात बड़ी प्रसिद्ध है; खास कर अंग्रेजों के शासन के समय इतिहास की पुस्तकों में इस घटना को बढ़ा-चढ़ाकर लिखा गया था और सच्चाई पर परदा डाला गया था। मगर वास्तविकता कुछ और थी, उसे मैं जानती हूँ।

वह काली कोठरी सिराज ने नहीं बनवायी थी। उसे तो अंग्रेज व्यापारियों ने, भारतीय अपराधियों और कर्जदारों को बंद कर रखने के लिए बनवाया था। सिराज को बदनाम करने के लिए झूठी बातें बतायी गयीं कि उसने ३ मीटर लम्बे कमरे में १४६ कैदियों को बंद कर रखा था और सबेरे केवल २३ व्यक्ति ही जीवित बचे। लेकिन कंपनी के दस्तावेजों में भी इसकी चर्चा न मिलेगी; केवल क्लाइव और वाटसन ने अपनी पुस्तक में इसका उल्लेख किया है।

असल में सिराज को इसका बिलकुल पता न था। बहुत से लोग बचकर भाग गये। किले में १२३ लोग थे ही नहीं। नशे में चूर कैदियों को इस कमरे में धकेलकर बंद कर दिया गया था। गर्मी, उमस और नशे के कारण कुछ लोग मरे पड़े थे। लेकिन हालवेल ने अपनी हार छिपाने तथा लोगों के दिल में सिराज के प्रति घृणा पैदा करने के लिए ऐसी झूठी अफवाह उड़ा दी।

हालवेल बड़ा क्रूर व निर्मम था। धन का भूखा था वह। सिराज

के उपरांत मीरजाफर को गद्दी का वारिस बनाने की बात कहकर उसने एक लाख रुपया उससे रिश्वत में लिया। इधर मीर कासिम से भी तीन लाख हड़प लिया। इसी तरह मीर कासिम को गद्दी दिलवाते वक्त मीर जाफर के ऊपर जो-जो दोष लगाये, वे अनंत थे। उसकी याद करते ही मेरा मन घृणा से उमड़ आता है। अंग्रेज कलकत्ता से भगा दिये गये। कलकत्ता नवाब के कब्जे में आ गया। रातों-रात वे लोग कहाँ गये, जानते हैं? मेरे तट पर एक छोटे गाँव में इकट्ठे हुए। सिराज अब उनसे पहले से ज्यादा नफरत करने लगा था। वह अभी बीस वर्ष का भी नहीं हुआ था, फिर भी उसने बड़ी वीरता दिखायी थी। उसमें चाहे कितने ही दोष क्यों न हों, उसने इन फिरंगियों को इस मिट्टी से भगा देने की प्रतिज्ञा की थी। लेकिन बेचारा इतना भोला था कि अपने विरुद्ध चलनेवाले छल-प्रपंच को समझ न पाया।

फ्रांसीसी सरदार सिराज का निकट मित्र था। मगर दरबार के अमीर-उमराव व नवाब फ्रांसीसियों की मदद नहीं करना चाहते थे; वे तो अंग्रेजों का पक्ष लेकर छिपे तौर से सिराज को हटाने की ताक में थे। मीर जाफर सिराज का निकट का रिश्तेदार था। अंग्रेज उसे नवाब बनाकर अपने इशारों पर नचाना चाहते थे। सिराज को इन बातों का पता चला, मगर वह घबराया नहीं। वह सीधे जाकर मीर जाफर से मिला। उस जवान योद्धा ने देश की आजादी, गौरव और अलीवर्दी खां के वंश-गौरव, अंग्रेजों की जालसाजी, उनकी प्रवंचकता, आदि सबके बारे में उससे खुलकर बातें कीं। कुरान की कसम लेकर मीर जाफर ने कहा कि वह अंग्रेजों का पक्ष न लेगा। सजल आँखों से उसने सिराज से माफी माँगी। उसी क्षण उदार नवाब सिराज सब कुछ भूल गया और मीर जाफर को गले से लगा लिया। बात यहीं खत्म होती तो अच्छा होता। मीर जाफर सुधरा नहीं, वह द्रोही ही रहा और अंग्रेजों के लिए गुप्तचर का काम करता रहा, बंगाल की

गद्दी पर बैठने का सपना देखता रहा।

कम्पनी से उसने एक विचित्र समझौता कर लिया था। जिसकी रीढ़ की हड्डी नहीं, वह नवाबी क्या करता? समझा यह था कि मीर जाफर नवाब बना रहेगा, मगर शासन-अधिकार कम्पनी के हाथ में होगा। और खर्च? वह तो नवाब को ही करना था।

२३ जून, १७५७ ई० की बात है। मेरे तट पर प्लासी नामक स्थान पर एक भीषण युद्ध हुआ। उसे युद्ध कहने का मेरा मन नहीं; युद्ध के नाम पर एक नाटक कहूँ तो ठीक रहेगा। इस विशाल भारत देश का भविष्य उस नाटक पर निर्भर था। 'जो व्यापार करने आये, वे व्यापारी बने रहेंगे या ताजदार बनेंगे।' इस प्रश्न का उत्तर इस नाटक में मिल गया।

नगाड़े बज उठे। क्लाइव रंगमंच पर आया। यह बड़ा ही चतुर था। कूटनीति और कपट में अपना सानी न रखता। वह साहसी भी था। युद्ध-क्षत्र में वह खिल उठता था। इसने मीर जाफर को नवाब बनाकर सिराज को पदच्युत करने की योजना बनायी थी। कलकत्ता के गवर्नर माणिकचन्द को इसने अपने वश में कर लिया था। फिर क्या था, घमासान युद्ध छिड़ा। खून की धारा बह निकली, लाशें बिखर पड़ीं। कौए और चीलें मंडराने लगीं। सुबह होते ही विजय भेरियाँ बज उठीं। अंग्रेज जीत गए। नवाबों की सेना में वीरता की कमी न थी। संख्या भी बहुत थी। मगर सैनिक संचालन ठीक न था। उनके अस्त्र-शस्त्र पुराने ढंग के थे।

मेरे पुत्र वीर योद्धा हैं। उनकी नस-नस में साहस भरा है। मगर क्या कहूँ मैं? दुःख से मेरा गला भर आता है। चाहे मां अपने बच्चों के प्रति अबाध स्नेह व वात्सल्य क्यों न रखती हो, उनकी कमियों और दोषों से अपरिचित रहती कैसे? मैं आर्तनाद कर उठी कि ओह...मेरी संतानों की आपसी दुश्मनी और एकता का अभाव ही इस घोर अधःपतन का कारण है। झाड़-झंखाड़ जैसे अच्छी फसल को

बरबाद कर देते हैं, उसी तरह इन विश्वासघातियों ने सब कुछ चौपट कर दिया।

उस दिन का युद्ध कुरुक्षेत्र का युद्ध नहीं था। एकाएक नवाब की छावनी पर हमला बोल दिया गया कि भगदड़ मच गयी। अंग्रेजों के आने से पहले ही सिराज वहाँ से भाग गया। क्लाइव के गोलों के समक्ष टिकने का साहस किसी को न रहा। जो होना था, वही हुआ। अंगुली पर गिनने लायक व्यापारियों को इसी प्लासी युद्ध ने राजा बना दिया। नवाब की सेना का संचालन जिन्होंने किया, वे विश्वास-घाती थे। मीर जाफर ने युद्ध करने का बहाना भर किया, लड़ा नहीं। गुप्त रूप से समय-समय पर अंग्रेजों को यहाँ की खबरें भेजता रहा।

उस दिन सूर्यास्त के साथ भारत की स्वतंत्रता भी अस्त हो गयी। मेरा दिल भारी हो उठा। मीर जाफर द्वारा भेजे गये समाचारों के अनुसार २२ जून, १७५७ ई० को संध्या के समय कम्पनी की फौज गंगा को पार करके आगे बढ़ी। प्लासी का मैदान लगभग २४ लोमीटर की दूरी पर था। सिराज ने जहाँ पर अपनी सेनाओं का मोर्चा लगाया था, वह प्राकृतिक किलेबन्दी-सा रहा।

सिराज को पूरा-पूरा विश्वास था कि वह ज़ीत जाएगा। मगर उसके विश्वासी सेनानायकों ने कैसा भयंकर द्रोह कर दिया—उसकी याद करते ही आज भी मेरा दिल कांप उठता है। जिसे युद्ध में जीता न जा सका, उसे द्रोह ने बुरी तरह हरा दिया।

सबेरे...पूरब में उदित अरुण ने देखा, सेना का कहीं पता नहीं—केवल लाशें पड़ी हैं इधर-उधर। तिस पर भी सिराज का दिल न हारा। उसने मीर मदन को सेनापति बनाया। अंग्रेजों ने एक बागान में मुकाम डाला था। क्लाइव ने अपनी सेना को चार टुकड़ियों में बाँट कर अलग-अलग जगहों पर रखा था। नवाब की सेना के हाथी, घोड़े और वीरों ने गजब का शौर्य दिखाया। क्लाइव पीछे हट गया। मीर का पराक्रम अद्भुत था। दुश्मन पीछे रह गये...जीत की आशा

बन रही थी कि पांसा पलट गया। जोर की वर्षा होने लगी। सारी बारूद भींग गयी। मीर मदन की जाँघ पर गोली लग गयी। इसके साथ ही अब उसके अन्य सेनापति भी युद्ध करने का बहाना कर रहे थे। मीरजाफर जैसे नमकहरामों के द्रोहपूर्ण कृत्यों को सूचित करने के बाद मीर मदन ने अंतिम सांस ली। सिराज पर मानो पहाड़ टूट पड़ा। उस वीर के हृदय में अन्धड़-सा मच गया। विदेशी की शरण लेने से बढ़कर अपने भाई को समझाना अच्छा मानकर उसने मीर जाफर को बुला भेजा। जाफर अपने सखाओं के साथ आया। सिराज ने मणिमुकुट उतार कर उसके सामने रख दिया और विनीत स्वर में प्रार्थना की, 'जाफर! जो कुछ होना था, हो गया। अब तो इस देश की आजादी…और दादा अलीवर्दी खाँ के गौरव की रक्षा करना तुम्हारा कर्तव्य है। इसे भूल न जाना।' मीरजाफर ने जो कुछ मीठी बातें की, उसको सिराज सच मान बैठा। यही नहीं, उसने उस पर विश्वास भी रखा।

हाँ, प्लासी का युद्ध क्षेत्र…इस तरह की घटनाओं से रंगमंच सा लग रहा था। क्षण-क्षण दृश्य बदलते गये। नवाब के लिए जान देने वाले कितने ही वीर तैयार थे। पर नवाब का सच्चा मित्र व हितैषी का स्वांग रचाकर दुश्मन की मदद कराने वालों की भी कमी न थी। सिराज रूपी सूर्य का अस्त हो गया। रातोंरात राजधानी को छोड़कर भाग निकला। अपनी बेगम लुत्फउन्नीसा से वह बहुत प्यार करता था। चारों तरफ धधकती ज्वाला के बीच में बेगम का प्यार मंद मारुत-सा उसे आह्लादित करता था। सिराज अपने बेटे और बेगम को लेकर भागा था। लेकिन विधि कुछ और ही थी। मीरजाफर के बेटे ने उसे मार डाला। नियति कितनी कठोर है! पच्चीस वर्ष की उम्र का वह जवान योद्धा, जिससे कम्पनी आतंकित हो उठती थी, निर्दयता से अपने ही आदमियों द्वारा मारा गया। लुत्फउन्नीसा उसे जी-जान से प्यार करती थी। सिराज की मृत्यु के बाद वह मुर्शिदाबाद

में रही। रोज संध्या की बेला में सिराज की कब्र पर दीप जलाकर प्रार्थना करती थी।

गहन अंधकार में टिमटिमाता दीप उस तरफ से गुजरने वालों के दिल में सिराज की स्मृति को जगा दिया करता था।

एक उज्ज्वल दीप बुझ गया। मगर कलकत्ता महानगरी जगमगाने लग गयी। पश्चिम बंगाल की यह राजधानी भारत भर में सबसे बड़ी नगरी है। उन दिनों में मेरा जलमार्ग प्रसिद्ध था। यातायात और वाणिज्य का मेरा जलमार्ग ही प्रमुख साधन था। आज रेलमार्ग और हवाई जहाज और समुद्री मार्ग के लिए कलकत्ता प्रधान केन्द्र है। पूरबी भारत में यही सबसे बड़ा बंदरगाह है। हुगली के बायें किनारे पर जहाँ हुगली का समुद्र से संगम होता है, वहाँ से १३० किलोमीटर उत्तर की ओर यह बन्दरगाह है। हाँ…हुगली तट पर प्राकृतिक ढंग से बने इस बंदरगाह को हुगली बार-बार खराब कर देती है। किनारों और मोड़ों पर जो कीचड़ मिट्टी व तलछट जमा कर देती है, जिससे-जहाजों के आने-जाने में कठिनाई होती है, इस कठिनाई से बचने के इरादे से खाड़ी के निकट डायमंड हार्बर बना है, वहाँ पर जल की गहराई अधिक है। इसके अलावा पोत ठहरने के लिए कई छोटे-मोटे बन्दरगाह हैं। यह नगरी बंगाल का मुख्य व्यापारिक क्षेत्र होने के कारण बंगाल के अन्य प्रदेशों से सडकों, जलमार्गों व रेलमार्गों द्वारा जुड़ी हुई है। कलकत्ता घना आबाद शहर है। इसका क्षेत्रफल ४२,४०६ वर्ग किलोमीटर है। उपनगरों का विस्तार होता रहता है। हुगली से कलकत्ता तक मेरे दोनों तटों पर कल-कारखाने, मिलें, फैक्ट्रियाँ, औद्योगिक केन्द्रों की कतार-सी लगी है। यहाँ पर मेरा प्राकृतिक सौंदर्य देखने को न मिलेगा। जहाँ देखो, धुआँ, उगलती चिमनियाँ, नाव, स्टीमर, माल-असबाबों से भरे पोत, सन के बोरे, चारों ओर कूड़ा-कचरा ही दिखायी देगा। मेरे इस मुहाने से उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, असम आदि अधिक दूर नहीं

हैं न ? इसलिए इनके लिए भी यही मुख्य बन्दरगाह है।

इस नगरी में सभी प्रान्तों के व सभी देशों के लोग आ बसे हैं। विभिन्न भाषा, धर्म व जाति के रहन-सहन, बोलचाल और रीति-रिवाजों को यहाँ देखकर आश्यर्य होता है। यहाँ पाश्चात्य सभ्यता की चमक-दमक आँखों को चौंधिया देती है। दिन-रात का भेद निकालना मुश्किल हो जाता है। चौरंगी इस महानगरी का मुख्य स्थान है। ऊँचे-ऊँचे मकान, बाजार, कार्यालय यहीं पर हैं। शहर के बीच में होने से चारों तरफ से आना-जाना सुगम होता है। चौरंगी के सामने 'अक्टरलोनी' है। ५० मीटर ऊँचाई का एक स्मृति चिह्न खड़ा रहता है। यह भवन दर्शनीय है। पाश्चात्य तथा स्थापत्य कला का अद्‌भुत सम्मिश्रण है यह। इसका निचला भाग मिस्र की स्थापत्य कला की याद दिलाता है। ऊपर का वितान और गुम्बज तुर्की शैली का है। इसके सामने एक लंबा-चौड़ा मैदान है। तीन किलोमीटर लम्बा, और डेढ़ किलो मीटर चौड़ा इस मैदान में छायादार वृक्ष हैं। शाम-सवेरे यहाँ लोगों की भीड़ रहती है। हरी-भरी मखमली घास-शीतल छायादार वृक्ष। कितना मनोरम दृश्य है!

जो पहले कभी वाइसराय का महल था, वह आजकल राष्ट्रीय पुस्तकालय है। फोर्ट विलियम किला विशाल है। गिरजाघर, तालाब, सिनेमाघर, परेड का मैदान आदि हैं। लार्ड वेल्सली द्वारा निर्मित महल देखने लायक है। इसके बनने में बीस लाख रुपया खर्च हुआ था। विधान सभा, हाई कोर्ट सब कुछ यहीं है। हुगली के दायें तट पर हावड़ा का लंबा पुल है। यह ६५५ मीटर लम्बा है। यह हुगली और कलकत्ता को जोड़ता है। मेरे पश्चिम तट पर बेलूर मठ है। नगर के कोलाहल व हलचलों से दूर यह स्थान बड़ा शांत और सुन्दर है। इसके बाद डलहौजी स्क्वेयर है। यह व्यापार का मुख्य केन्द्र है। बैंक, स्टाक मार्केट, कार्यालय यहाँ पर हैं। नवाब और कम्पनी के अधिकारी यहीं पर रहा करते थे जिनके आलीशान मकान आज

भी हैं। उत्तर की तरफ चित्तपुर में तंग रोड पर जरा दूर जाएँ तो माकुदा मस्जिद दिखाई देगी। यह अति प्राचीन मस्जिद है। यहाँ पर एक साथ १०,००० आदमी बैठ सकते हैं। इसी सड़क के उत्तरी कोने पर महाकवि ठाकुर का घर है।

संगमरमर का राजमहल १२ एकड़ के विस्तार में खड़ा है। सुन्दर बाग-बगीचे, पुष्पवाटिकाओं से भरी इस रमणीय स्थली में चिड़ियाघर है। स्थापत्य कला का यह अनूठा नमूना है। बद्रीदास सड़क पर एक सुन्दर जैन मन्दिर है। यह १८४७ ई० में बना था।

कलकत्ता शहर को पार करते ही मैं बहुत श्रांत व क्लांत हो जाती हूँ। मुझे और १६० किलोमीटर की यात्रा तय करनी होगी। गंगासागर के निकट पहुँचते-पहुँचते मेरा दिल व्यग्र हो उठता है। यहीं पर कपिल मुनि तपस्या रत थे। कलकत्ता से जहाज द्वारा यहाँ पहुँच सकते हैं या डायमंड हार्बर द्वारा भी आ सकते हैं। मेरे मुहाने पर कई छोटे-मोटे द्वीप हैं। काकद्वीप, सागर द्वीप इनमें मुख्य हैं। रेत-मिट्टी के जमा होने से कई टीले उठ खड़े होते हैं और बवंडर में डूबते रहत हैं। मेरे भागीरथी संगम तथा और संगमों के बीच में कई किलो-मीटर की दूरी है। मेरा प्रवाह कई छोटी-मोटी धाराओं में बँटकर सागर में मिल जाता है।

हिमालय से उत्पन्न होती मेरी जीवन यात्रा···कितनी लम्बी और रोचक है। मेरी कुल लम्बाई २५१० किलोमीटर है। भारत-वासी मुझे पवित्र और पुण्य नदी मानते हैं और मानते हैं कि मेरी धारा में डुबकी लगाने से उनका जन्म सार्थक हो जाता है और मैं ? मैं भी इस पुण्य भारत-भूमि पर बहना अपना अहोभाग्य समझती हूँ।

●

८

आपने अब तक गंगा की कथा सुनी, अब मैं गंगा के बारे में कुछ कहना चाहती हूँ।

गंगा और उसकी सहायक नदियों से आज भारत की औद्योगिक उन्नति के लिए जो सिंचाई, जल और शक्ति मिलती है, उसका परिचय देना चाहती हूँ।

पहले सिंचाई की बात देखें—उत्तर प्रदेश की नहरों में ऊपरी गंगा नहर १८५४ ई० में बनी थी। यह हरिद्वार के निकट गंगा के दाहिने किनारे से निकाली गयी है। इससे निकली शाखाएँ गंगा-यमुना के दोआब प्रदेश को हरा-भरा करती हैं। मुख्य नहर की लम्बाई ३४३ किलोमीटर है। भूमि ढालू होने के कारण ७ स्थानों पर कृत्रिम झरनों द्वारा जल विद्युत निकाली जाती है।

निचली गंगा नहर बुलन्दशहर जिले के नरौरा नामक स्थान से १९०० ई० में निकाली गयी है। इसकी दो शाखाएँ - कानपुर शाखा और इटावा शाखा कहलाती हैं। कानपुर-इटावा नहर ऊपरी गंगा नहर को पार करके फतेहपुर जिले में यमुना से मिलती है।

रामगंगा नदी पर गढ़वाल जिले में बालागढ़ स्थान पर बाँध बना है। इसकी नहरें गढ़मुक्तेश्वर के निकट गंगा में मिलती हैं। शक्ति उत्पादन में गंगा ग्रिड योजना महत्वपूर्ण है। बहादुराबाद, मुहम्मदपुर, चितौरा, सुमेरा, जैसे कई स्थानों पर कृत्रिम बाँध बनाकर बिजली उत्पन्न की जाती है। इन सबको सम्बद्ध कर दिया गया है जिससे लगभग सौ नगरों को बिजली मिली है। वैसे शारदा ग्रिड योजना द्वारा बिजली निकाली गयी है। रामगंगा नदी पर कालागढ़ में विद्युत उत्पन्न करते हैं।

बिहार में न वर्षा की कमी है, न नदी के पानी की। फिर भी सोन नदी पर डेहरी में बाँध बना है, जिससे दो मुख्य नहरें निकाली

गयी हैं। इसको पश्चिमी सोन और पूर्वी सोन कहते हैं। ये नहरें इतनी गहरी और समृद्ध हैं कि इन पर नावें चलती हैं। शाहाबाद, पटना, गया जिलों की सिंचाई इनके द्वारा होती है। गंडक नदी पर भी त्रिवेणी घाट के निकट एक बाँध बना है, जिसके नहरों द्वारा सारन, चंपारन, मुजफ्फरपुर, दरभंगा आदि प्रदेशों की सिचाई होती है। कोसी योजना भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। नेपाल में उत्पन्न होकर यह नदी सँकरी घाटी को पार करती हुई बिहार में आती और लगभग २७० किलोमीटर यात्रा कर गंगा में मिलती है। इस घाटी का क्षेत्रफल ६०,००० वर्ग किलोमीटर है जिसमें सालाना ३५० सेंटीमीटर तक की वर्षा होती है। इतना जल प्रवाह बिहार में सर्वनाश का हाहाकार मचाता रहा। हाल ही में नेपाल-भारत सहयोग से कोसी योजना पूरी हुई है। कोसी से निकाली नहरें नेपाल, भारत दोनों का सिंचन करता हैं। बाँध के जल विद्युत केंद्र से बिजली निकाली जाती है। इसके अलावा बाढ़ के खतरे से बचने के लिए १०० किलोमीटर तक तटबाँधों का निर्माण हुआ है।

पश्चिम बंगाल में दामोदर नदी घाटी योजना प्रमुख है। इसकी निचली घाटी से जो नहर निकलती है, वह आसनसोल, हुगली, बर्दवान जिलों को सींचती है। इस योजना का काम बिहार में है और सिंचन का क्षेत्र बंगाल है। दुर्गापुर बाँध द्वारा पुरानी नहरों की सिंचन शक्ति बढ़ायी गयी है। दामोदर २९० किलोमीटर बिहार में तथा २४० किलोमीटर बंगाल में प्रवाहित होकर अंत में कलकत्ता से ४० किलोमीटर नीचे हुगली से मिलती है। यह भी अपनी बाढ़ के कारण बिहार का सर्वनाश करती रही। इस योजना के अन्तर्गत तिलैया, मेथान, कोनार, पेन्वेट, बोकारो, अय्यार, बालपहाड़ी आदि ८ बाँध दामोदर तथा उसकी उपनदियों पर बने हैं। बोकारो पर कोयला विद्युत निर्माण गृह है। दुर्गापुर में तापीय विद्युत केन्द्र हैं। वैसे अन्य बाँधों से विद्युत निकालकर ग्रिड बनाये गये हैं।

दुर्गापुर में अवरोधक बनाकर, नहरें निकाली गयी हैं जो बर्दवान, बाँकुरा, हुगली, २४ परगना आदि जिलों का सिंचन करती हैं और अन्त में हुगली में मिल जाती हैं। तिलैया वाँध हजारीबाग जिले में है। इसकी लम्बाई ३४० मीटर तथा ऊँचाई ३० मीटर है। यहाँ पर जल विद्युत स्टेशन है। कोनार बाँध हजारीबाग से ३८ किलोमीटर की दूरी पर है। यह ३९६० मीटर लम्बा, ५० मीटर ऊँचा है। यहाँ विद्युत उत्पादन केन्द्र है। मेथान बाँध धनबाद जिले में, बराबर वहीं पर बना है। इसकी लम्बाई ४,७१० मीटर और ऊँचाई ५० मीटर है। यहाँ जलाशय और जल विद्युत केन्द्र बने हैं। दुर्गापुर में जो अवरोधक बाँध बना है, उसकी लम्बाई ६१२ मीटर और ऊँचाई १२ मीटर है। इसके दोनों तरफ नहरें निकाली गयी हैं। बोकारो तापीय विद्युत केन्द्र हजारीबाग जिले में है। दुर्गापुर के पास बर्दवान जिले में ओयार तापीय विद्युत केन्द्र तथा चन्द्रपुरा तापीय विद्युत केन्द्र भी बना है। इन बाँधों से बिहार और बंगाल को बड़ा लाभ हुआ है। विद्युत के द्वारा जमशेदपुर, बर्नपुर के लौह इस्पात के कारखाने, चित्तरंजन का इंजिन कारखाना जैसे कई कारखानों तथा अन्य औद्योगिक कार्यों की उन्नति हुई है। इसके अतिरिक्त दामोदर के कारण जो भूक्षरण होता था वह रोक दिया गया है। अपार जल प्रवाह से जो दलदली प्रदेश बन जाता था, उस प्रदेश का जल-निष्कासन भी हो गया है। यह बंगाल के लिए वरदानमयी है।

मयूराक्षी पर बिहार राज्य के सन्थाल परगना में ६९४ मीटर लम्बा और ३४ मीटर ऊँचा एक बाँध बना है। इससे लगभग ३२ किलोमीटर नीचे एक अवरोधक बाँध भी बना है। संथाल परगना, बीरभूमि, मुर्शिदाबाद, बर्दवान आदि का सिंचन होता है। इस बाँध से विद्युत उत्पादन भी काफी मात्रा में मिलता है।

हाँ, गंगा बैरज योजना पर कहना भूल गयी हूँ। यह भी एक प्रमुख, बहुमुखी योजना है। नौकावहन, नदियों के जल का नियंत्रण तथा सिंचाई की नहरें आदि पर ध्यान दिया गया है।

